अधियज्ञ-मित्र
अश्वत्थ मित्र
अमृतम
श्री राम लीला के पात्र

श्री सनातन आश्रम, गौराबाग, कुर्सी रोड, लखनऊ

वन्दना

ॐ पूर्णमंदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

भवार्थ :-

पूर्ण है परमात्मा, स्वयं सर्वदा पूर्ण है।
उनमें से उद्‌भूत जगत स्वयं पूर्ण है।।
जो होता है उत्पन्न पूर्ण से, स्वतः पूर्ण है।
पूर्ण निकालने पर भी, रहता ब्रह्म पूर्ण है।।

अधियज्ञ-मित्र

परमयोगी स्वामी सनातन श्री ब्रह्मचारी

ईशावास्योपनिषद।

आत्म स्तुति यज्ञ-स्तुति

''महाभारत जीत गये अर्जुन की यज्ञ-स्तुति है यह।''

श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारह अध्याय ही वानप्रस्थी का अट्ठारह दिन का महाभारत होता है। प्रत्येक वानप्रस्थी को यज्ञ-कुण्ड के सम्मुख यज्ञोपवीत रूपी गाण्डीव को हाथ में लेकर प्रतिज्ञाओं द्वारा सम्पूर्ण वाह्य चिन्तन मात्र को त्यागना होता था। प्रत्येक दिन वह सारे नाते-रिश्तेदारों को, प्रतिज्ञापूर्वक यज्ञ-कुण्ड के समक्ष, यज्ञोपवीत को हाथ में लेकर मारता था अर्थात् मनसा-वाचा-कर्मणा त्याग कर सम्पूर्ण वाह्य चिन्तन-मात्र (स्वजन, दुर्जन सब कुछ) की चितायें जलाकर दस इन्द्रियों रूपी दस फन वाले कालिया नाग को नथ; बुद्धि और आत्मा के द्वैत को, योग द्वारा अद्वैत कर ब्रह्म-कपाल से प्रकट होने का संकल्प करता था।

वानप्रस्थ में व्यक्ति श्वेत अथवा पीत वस्त्र को धारण करता था। ये रंग समर्पण के प्रतीक हैं। परन्तु जब सबकी चितायें जला देता थाय अपनी भी चिता जलाकर, सबका पिण्डदान आदि करके अन्त में-ष्शरीर सामिग्री को आत्मा यज्ञ-कुण्ड की प्रलयंकर ज्वालाओं में यज्ञ करूँगा‍ऽ ऐसा नाद करता हुआ, शंखध्वनि करता था। तदुपरान्त शस्त्र से शिखा को काटकर यज्ञोपवीत को तोड़, श्वेत अथवा पीत वस्त्रों का परित्याग कर देता था और ज्वाला का प्रतीक गे—आ वस्त्र धारण करता था। इस प्रकार सन्यास में प्रवेश पाता था।

श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारह अध्यायों रूपी युद्ध का प्रतीकात्मक, अट्ठारह श्लोकों का यह दिव्य उपनिषद् उसकी स्तुति बनती थी जिसे सन्यासी यज्ञ-क्रूण्ड के सम्मुख उच्चारण करता, धीरे-धीरे समाधिस्थ हो जाता था। इस प्रकार युद्ध जीत गये अर्जुन की यज्ञ-स्तुति अथवा आत्म-स्तुति जो गीता के अट्ठारह अध्यायों का प्रतीक है- सो यह अट्ठारह श्लोको की पुस्तक्त ईशावास्योपनिषद् है।''

ॐ ईशावास्यमिद सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।1।।

जगत में जो कुछ जड़-चेतन संसार है, वह सब ईश्वर द्वारा आच्छादनीय है। उसके त्याग भाव से तू अपना पालन कर, किसी के धन की कामना न कर।

हे मेरे संकल्प मन ! जला दी हैं चितायें सारी जल गया है एक चिता में तू भी ! दशानन से बना है दशरथ ! नथ लिया है दस इन्द्रियों वाला नाग कालिया ! हे संकल्प मन! अब दृढ़ रहना ! किसी के धन की अर्थात् भौतिक आकांक्षा की चाहना कदापि-कदापि न करना ! सम्पूर्ण जगत जड़ चेतन, स्थावर-जंगम माधव ही है। उसे ही सदा सम्मुख रखना ! उसे ही देखना ! उसे ही सुनना ! उससे ही बोलना ! उसे ही खाना ! उसे ही पहनना ! हर कदम परिक्रमा हो माधव की ! जल का प्रत्येक बूंट चरणामृत जानो ! हर सेवा मात्र उसी के निमित्त हो- वही सम्मुख रहे सदा ! **माया संसार को दृढ़ता से त्यागकर, केवल श्रीहरि से ही आकांक्षा कर !** उन्हीं से प्यार कर ! उन्हीं के लिये सब कर्म कर !

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः।

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।2।।

इस लोक में कर्म करते हुये ही सौ वर्ष जीने की इच्छा कर ! यह मनुष्य रूपी चोला धारण करने वाले ! तेरे लिए इसके सिवा अन्य कोई मार्ग नहीं है जिससे तुझे कर्म का लेप न हो।

हे दृढ़बुद्धे ! जब तक मनुष्य रूपी चोले को धारण किये हुये है तब तक सम्पूर्ण माया जगत से त्यक्त एवं निलिप्त होता हुआ तू केवल आत्म-यज्ञार्थ कर्म कर ! जो कुछ भी कर श्रीहरि के निमित्त ही हो। मत सोच कि तू इसकी अथवा उसकी सेवा कर रहा है मत जान कि कौन क्या है? जो भी कर्म कर केवल निष्काम भाव से, फल की चाहना न रखते हुए मात्र प्रभु के लिए ही। **यदि प्रवचन भी करे तो जान उन्हीं को पढ़ा रहा हूँ, माधव को ही सुना रहा हूँ।** सेवा करे किसी की तो जान कि माधव की ही सेवा कर रहा हूँ। भोजन बनावे तो जान कि उन्हीं के लिए बना रहा हूँ। खावे तो जान कि

उन्हीं को अर्पित कर रहा हूँ। इस प्रकार सम्पूर्ण कर्मों को त्याग भावना से करते हुए शरीर रूपी मन्दिर की रक्षा एवं सेवा आत्म यज्ञार्थ करता हुआ, दीर्घकाल तक तप करने की इच्छा कर ! सब कर्मों में निर्लिप्त होने से तेरा पाप और पुण्य का लेप न होगा। **हर क्षण जी माधव के लिए!**

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
ता स्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।3।।

वे असुर सम्बन्धी लोक आत्मा के अदर्शन रूप अज्ञान से आच्छादित हैं। जो कोई भी आत्मा का हनन करने वाले लोग हैं वे मरने के अनन्तर उन्हें प्राप्त होते हैं।

हे निर्णायक सत्यबुद्धे ! **सम्पूर्ण भौतिक जगत के स्वरूप मिथ्या हैं। अज्ञान से भासते हैं। स्वप्न की नाईं हैं।** अतिरिक्त उस आत्मा माधव रूपी सत्य के, सब कुछ असत्य है। माता-पिता, भाई-बहन, पत्नी, सन्तान, मकान, दुकान, मित्र-शत्रु- **सब असत्य हैं, एक आत्मा ही सत्य है।** आत्मा शरीर से हटा कि सब कुछ मिटा;स्वप्न मात्र बनकर रह गया। तब क्यों तू अज्ञान रूपी अदर्शन से ऐसा जानकर आत्मद्रोही बने आत्म सत्य के विपरात चले और असुर अर्थात निम्नयोनियों के भटकाव को प्राप्त हो। जाग रे सत्यनिष्ठ ! हे तपनिष्ठ ! हे आत्म निष्ठ ! सब कुछ एक आत्मा माधव के प्रति ही कर तथा उसी के निमित्त कर ! अहो ! **एक उसकी ही सेवा ले !** उसी से ही सब कुछ ग्रहण कर ! उसी को देख ! उसी को सुन ! उसी का संग कर !

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनदेवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येतितिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ।।4।।

वह आत्मतत्व अपने स्वरूप से न विचलित होने वाला, अद्वैत तथा मन से भी तीव्र गति वाला है। इसे इन्द्रियां प्राप्त नहीं कर सकती क्योंकि यह उनसे आगे है। स्थिर होने पर सब गतिशीलों से तीव्र है। उसके रहते ही वायु समस्त प्राणियों के प्रवृत्ति रूप कर्मों का विभाग करता है।

जान उस आत्मा माधव को ! अहो! वह अपने स्वरूप से विचलित नहीं होता है अर्थात् अमर है मन से भी तीव्र है और अटल है। वह मन और इन्द्रियों का अविषय है, उनकी पहुँच से बहुत बाहर है। वह स्थिर भी है और

....**जो सनातन है सो आत्मा है।** जो सनातन धर्म है सो आत्मा का धर्म है। प्रकृति और परुष की लीलायें दिखती हैं सर्वत्र- रामचन्द्र की लीला, कृष्णचन्द्र की लीला- प्रत्येक शास्त्र, पुराण, उपनिषद् जिसने तत्व को न जाना; जिसने सत्य को न पाया, उसे फल क्या? जिसने लक्ष्य को जाना ही नहीं- वह पहुँचा कहाँ?

अहो **!** घट-घटवासी श्रीराम और श्रीकृष्ण कैसे हैं? वे तो आत्मप्रतीक परमात्मतत्व हैं। महाप्रभु सर्वगत हैं अर्थात् सब ओर गये हुए सर्वत्र हैं। वे शुद्ध, **अशरीरी** और अक्षत अर्थात् अमर हैं। वह तो तेजोऽसि हैं। **तेज स्वरूप प्राणज्योति हैं। शरीर तथा स्नायु आदि की सीमाओं से सीमित नहीं हैं, असीम हैं वे !** उनसे अधिक उत्कृष्ट नहीं है कुछ **!** महाप्रभु आत्मा माधव सर्वोत्कृष्ट हैं। **निर्मल हैं वे !** अविद्या रूपी मल से रहित अपापहत हैं अर्थात् पाप और पुण्य से परे हैं। वे सम्पूर्ण जगती के आदि कारण, सम्पूर्ण कर्मों के **मध्य में वास करते** हैं तो भी निर्लिप्त हैं। वे **स्वयम्भू** हैं अर्थात् अपने माता-पिता, सृष्टा-सृजक वे स्वयं हैं। वे ही प्रणयलीलाओं द्वारा भस्मियों को सुन्दर वनस्पतियों तथा नाना जीवधारियों के रूप में उत्पन्न करते है, वे सर्वशक्तिमान एवं सर्वत्र विद्यमान हैं? उन्होंने ही सम्पूर्ण जगत की सृष्टि **लीला द्वारा** की है। **ऐसे माधव कन्हाई को अपने भीतर भज रे मन !** एक नित्य सत्य का चिन्तन कर रे मन **!** उन्हीं को देख **!** उन्हीं को सुन **!** उन्हीं के संग हँस, बोल, खेल रे मन **! "मेरे तो गिरि धर गोपाल दूसरो न कोई...।**

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो; उ विद्याया रताः।।9।।
अन्यदेवाहुविद्ययान्यदाहुरविद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।10।।
विद्यां चाविद्यां च यस्तद्व दोभय सह।
अविद्यया मृत्यु तोर्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।11।।

जो अविद्या की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो विद्या में ही रत हैं वे मानो उससे भी अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

विद्या से और ही फल बतलाया गया है तथा अविद्या से और ही फल

बतलाया गया है। ऐसा हमने बुद्धिमान परुषों से सुना है जिन्होंने हमारे प्रति उसकी व्याख्या की थी।

जो विद्या और अविद्या- इन दोनों को ही एक साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

अहो ! विद्या और अविद्या में फंसे हैं मन। कर्म और उपासना, इन्द्रियोचित धर्म और आत्म धर्म, इन्द्रियोचित ज्ञान और आत्मज्ञान-फंस गये मन ! कौन श्रेष्ठ? कौन प्रधान? कौन सत्यमार्गी? कौन पलायनवादी? किसने पाया उसे और कौन डूब गया भटकाव के अन्धकार में? विद्वानों के मत मतान्तर, नाना फल, नाना विरोध? रे सत्य ! बता तू क्या है? अविद्या वालों को भटकता पाया अन्धकार में ! विद्यावान उससे भी गहन अन्धकार में भटकते देखे ! रे सत्य ! बता तू कहाँ है? किस मार्ग से चलूँ कि मिलूं कन्हाई को?

जो इन्द्रियों द्वारा लिए गये आत्मज्ञान का दृढ़तापूर्वक मनसा-वाचा-कर्मणा अनुसरण कर गया -**'तत्त्वमसि'** धारणा पुष्ट हुई जिसकी **'तेजोऽसि'** ध्यान जागृत हो अटल हो गया जिसका; **'एकोब्रह्म** द्वितीयोनास्ति' एकाग्रभाव, एकाग्र लगन, एकाग्र दृष्टि, चिन्तन, श्रवण, समाधि हो गई जिसकी; **'अहं ब्रह्मास्मि'** अधियज्ञ शुरू हो गया जिसका; शरीर बन गया गर्भ- आत्मा बना यज्ञ-कुण्ड ! शरीर सामिग्री को आत्मा कुण्ड में यज्ञ करता यज्ञ-फलरूपी हिरण्यजल को धारणा के सांचे में ढालता जो इस शरीर रूपी गर्भ में उत्पन्न होने लगा स्वयं- और 'सोऽहं' का नाद करता, ब्रह्मकपाल को फाड़ मृत्यु की सीमाओं को तोड़ भागा वही अविद्या से मृत्यु को पार कर गया तथा विद्या को धारण करता स्वयं सृष्टा हो गया।

विद्या और अविद्या में फंसा पोथा शास्त्री कहाँ गया? कहां गया?......

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो; उ सम्भूत्या रताः ।।12।।
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।13।।
सम्भूति च विनाशं च यस्तद्वदोभय सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्च्य सम्भूत्यामृतमश्नुते ।।14।।

जो असम्भूति की उपासना करते हैं वे घोर अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो सम्भूति में रत हैं वे मानो उनसे भी अधिक अन्धकार में प्रवेश करते हैं।

सम्भूति से और ही फल बताया गया है और असम्भूति से और ही फल बतलाया गया है। ऐसा हमने बुद्धि मानों से सुना है जिन्होंने हमारे प्रति उसकी व्याख्या की थी।

जो सम्भूति और असम्भूति इन दोनों को साथ-साथ जानता है, वह सम्भूति की उपासना से मृत्यु को पार करके असम्भूति द्वारा अमरत्त्व को प्राप्त कर लेता है।

...फंस गया है झगड़ा साकार और निराकार का, सगुण और निर्गुण का, व्यक्त और अव्यक्त का, इतिहास और आध्यात्म का। नाना तर्क, नाना प्रमाण, विद्वता का पाखण्ड अथवा बुद्धि-विलास? बुद्धिमानों के झुण्ड- ढूंढ़ते सुई बिजली के खम्भों के नीचे ! मंच की चमक-दमक ! वाह वाह ! कमाल और बेमिसाल ! बुद्धियों के द्वन्द्वों के साथ लिपटते-भटकते अबोध मानव-समूह ! रे सत्य बता तू कहाँ है? मुझे मेरा माधव मिला दे।

जो व्यक्त, साकार से धारणा का सबल सांचा बना, ध्यान से उसमें मुझको रमा- समाधिस्थ हो सम्पूर्ण को मुझमें ही यज्ञ कर मुझसे ही अद्वैत हो गया- **वही साकार सगुण से मृत्यु की सीमाओं को तोड़, 'सोऽहं' का उद्घोष करता ब्रह्मकपाल से प्रकट हो; मुझ अव्यक्त सर्वव्यापी में लय हो सर्वत्र हो गया। खिलौने से खिलाड़ी हो गया- उपासक से उपास्य हो गया।**

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।। 15 ।।

आदित्यमण्डलस्थ सत्य (आत्मा) का मुख ज्योतिर्मय पात्र से ढका हुआ है। हे पूषण ! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा की उपलब्धि कराने के लिए तू उसे उखाड़ दे।

हे पूषण ! विद्या और अविद्या, सम्भूति और अस म्भूति से निकलकर तेरे बताये हुये मार्ग पर **पांचों महावाक्यों के सत्य को** धारण करता, सम्पूर्ण

वाह्य जगत के भ्रम को नष्ट कर, दसों इन्द्रियों को नथ चल दिया हूँ भीतर सत्य का साक्षात्कार करा दे ! मुझको मेरे माधव से मिला दे ! सम्मुख खड़ा हो गया हूँ सत्य के। **देख रहा हूँ 'तत्सवितुं'- तीव्र ज्योतिर्मय प्रकाशवान आत्मा को ! सहस्रों सूर्यों** के तीव्र प्रकाश में निगाहें टिक नहीं पा रहा हैं। तीव्र प्रकाश की चकाचौंध में कुछ दिखता नहीं है। हे पूषण ! मुझ सत्यधर्मा को आत्मा के दर्शन हेतु इस ज्योतिर्मय प्रकाश-कवच को एक क्षण के लिए हटा दे जिससे देख तो लूँ मुख उस सत्य रूपी आत्मा माधव का।

पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन्समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमंतत्ते पश्यामियोऽसावसौ परुषः सोऽहमस्मि।। 16।।

हे जगत्पोषक सूर्य ! हे एकाकी गमन करने वाले ! हे यम ! हे सूर्य ! हे प्रजापतिनन्दन ! तू अपनी किरणों को हटा ले ! तेरा जो अतिशय कल्याणमय रूप है, उसे मैं देखता हूँ। **यह जो आदित्य मण्डलस्थ परुष है वह मैं हूँ।**

हे प्राणाधार आत्मन् ! शरीर लोक को प्रकाशमान करने वाले सूर्य ! हे माधव ! दिव्य मार्ग पर चलाने वाले हे यम ! मुझ जड़ में प्राणों का संचार करने वाले ! मुझे यज्ञों द्वारा स्वरूप देकर मेरा पोषण करने वाले हे आत्मा सूर्य ! मेरा भरण-पोषण करने वाले हे प्रजापति आत्मा सूर्य ! तू एक क्षण को अपना तेज समेट ले जिससे मैं तेरा अतिशय कल्याणमय सत्य स्वरूप देख सकूँ।

अहो ! देखो खड़ा हूँ सामने उसके ! अहो! देख रहा हूँ मैं उसको ! कैसी लीला है ! कैसा रहस्य है ! **खड़ा हूँ सामने अपने** ! देख रहा हूँ स्वयं को ! अरे ! यह जो आदित्य मण्डलस्थ पुरुष है वह तो मैं हूँ ! **अपना ही प्रति विम्ब देख रहा हूँ- सत्य का सम्मुख है।**

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम्।
ॐ क्रतो स्मर कृत स्मरक्रतोस्मरकृत स्मर।। 17।।

अब मेरा प्राण सर्वात्मक वायुरूप सूत्रात्मा को प्राप्त हो और यह शरीर भस्मशेष हो जाय। **हे मेरे संकल्प मन ! अब तू स्मरण कर ! अपने किए हुए को स्मरण कर! अब तू स्मरण कर ! अपने किये हुए को स्मरण कर !**

.....हे अधियज्ञ ! मुझे स्वयं में समेट ले। हे शरीर ! हे प्रकृति!! मिलन की अनुपम घड़ी है। हे शरीर! सामिग्रीवत् हो और **आत्मारूपी अधियज्ञ-कुण्ड** में यज्ञ हो-होकर भष्म शेष होता चल ! यज्ञ की घड़ी है ! मिलन की बेला है ! रोम रोम पुलकायमान है। मेरे ही शरीर में, मैं यज्ञ हो रहा हूँ।

मैं यज्ञ कर रहा हूँ मुझको, मुझमें ! हे मेरे संकल्य मन ! दृढ़तापूर्वक धारणा रूपी सांचे को स्मरण द्वारा पुष्ट कर और ढलने दे मुझको मेरे इष्ट के ढांचे में ! अहा ! **मैं यज्ञ हो रहा हूँ- अपने ही शरीर में मैं उत्पन्न हो रहा हूँ !**

प्रसव की पीड़ा है यह;

प्रसव का आनन्द है;

मेरे ही शरीर में-

जन्म ले रहा हूँ मैं ! - अहं ब्रह्मास्मि !

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहु-राणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्ति विधेम।। 18 ।।

हे अग्ने ! हमें कर्म-फल-भोग के लिए सन्मार्ग से ले चल। हे देव ! तू समस्त ज्ञान और कर्मों को जानने वाला है। हमारे पाखण्डपूर्ण पापों को नष्ट कर। हम तेरे निमित्त अनेकों नमस्कार करते हैं।

हे माधव ! सहस्त्रों सूर्यों को तेज देने वाले आत्मकुण्ड हे अधियज्ञ !! मुझ सत्यधर्मा को समेट ले ! मुझे यज्ञ कर ! **मुझे मेरे अद्वैत स्वरूप में ढाल ले !** मुझे ब्रह्मकपाल रूपी सन्मार्ग से ले चल ! **अद्वैत स्वरूप को धारण करता मैं सर्वत्र में लय हो जाऊँ।** हे माधव देख ! मैं स्तुति कर रहा हूँ तेरी ! तू कौन? अरे मैं ही तो हूँ ! **अपनी स्तुति कर रहा हूँ स्वयं !** ढल रे सखा ! ढल रे अधियज्ञ ! स्वप्न में स्वयं से स्वयं को पुकार रहा है। **जाग गया है !** हो गया है ब्रह्मकपाल से बाहर ज्योतिर्मय स्वरूप ! **स्वप्न से हुई जागृति ! खिलौना खिलाड़ी हो गया ! मैं ही तो हूँ ! मैं ही तो हूँ !''**

श्री स्वामी सनातन श्री

सीमिति साधन के अतिरिक्त बस नारायण ही है। उपेक्षा है, वंचक भाव है, घुटन है, इसके बाद भी जीवन को ईश्वरमय बनाने की इस प्रभु की बगिया की, रक्षा, सेवा का संकल्प है।

सनातन संस्कृति के मौलिक स्वरूप को यथा सामर्थ्य फैलाने की चाहत है।

–सनातन प्रेम

अश्वत्थ
मित्र
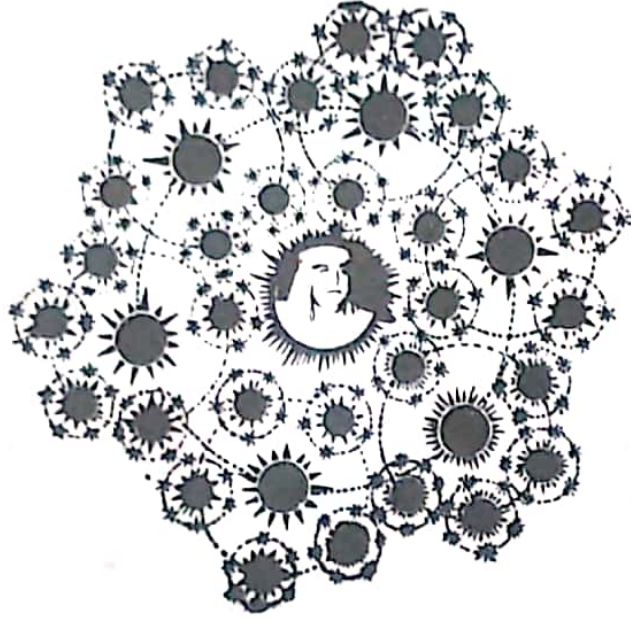
परम योगी स्वामी सनातन श्री

सनातन आश्रम कुर्सी रोड,
लखनऊ

अश्वत्थ मित्र

तत् त्वमसि

वह तुम हो!

जाना मैने; पहचाना मैने-- और अपनी धारणा का सांचा बिठाता चला गया। बना के शरीर जैसा कमरा ; सिर के जैसा गुम्बद लगा ; जटाओं जैसा कलश सजा-- आत्मा जैसी मूर्ति बिठा दी! बन गये तुम ; बना घर तुम्हारा ! **मेरी धारणा का साकार! मेरे ही शरीर-आत्मा के प्रतिबिम्ब!** मरे देव! मेरे अनन्त देव! शत-शत अभिनन्दन तुम्हारा!! तुम हो सर्वशक्तिमान! त्रैलोकेश्वर!! घट-घट वासी! मेरे प्यारे राम! हे कृष्ण! हे माधव!! हे सखा! तुम ही सम्पूर्ण जगती के आदि कारण हो! जगमग दिव्य रूप तुम्हारा है! यही धारणा है मेरी! यही साकार है मेरा! मेरी धारणा के सांचे में -- **मेरे इष्टदेव-- मेरी कल्पना का मेरा ही स्वरूप पा रहे हो!**

तत् त्वम् असि! वह तुम हो!

अपने ही **प्रतिबिम्ब** का बनाया देवालय।। घर तुम्हारा!! धारणा मेरी- स्वरूप तुम्हारा! फिर होकर आत्मविभोर तुम्हें गाता चला गया! गाया संग मेरे --खेत खलिहानो ने ! जंगल रेगिस्तानों ने! नदियों में समायी स्वर लहरी, हवाओं के संग झूम-झूम कर गाने लगीं तुमको! होकर बादलों पर सवार मैंने गगन में गाया तुम्हें! तुम्हें सुलाया, तुम्हें जगाया मैंने! धारणा का जीवन दे कर हर रूप में पाया मैने। मेरे अधिष्ठाता ! देवाधिदेव! तुम्हें शत-शत नमन्!!

तत् त्वम असि ! वह तुम हो!

मेरी धारणा के पवित्र आनन्द! गाये आत्म-विभोर गीत तुम्हारे! **तुम बने सृष्टा मेरे -- और पाया स्वरूप मुझसे! यही लीला है तुम्हारी ! हे इष्टदेव! हे सृष्टा! हे माधव! हे सखा मेरे ही शरीर-आंगन में रास कर रहे बिहारी!**

सोता रहा मैं थक-थक कर! न सोये तुम! मेरे बनाये देवालय में, **मेरी ही आत्मा के प्रतिबिम्ब**, तुम जीवन्त हुये -- और अमर हो गये ! फिर देवालय से देवालय; प्रतिबिम्ब के प्रतिबिम्ब; उत्पन्न होते चले गये! **मेरी ही परछाईयां प्रसवित हो निरन्तर बढ़ती चली गई !** रूप नये; नई सृष्टि के अमर देवता -- **मेरी धारणा के साकार स्वरूप! तुम एक से असंख्य हुये। हे अमर युग सृष्टा! शत-शत नमन!**

तत् त्वम् असि ! वह तुम हो।

विनाश की रात्रि के उपरान्त! उठ कर ढंढा तुम्हें! पहाड़ों में! कन्दराओं में! खण्डहरों में! न पाया कहीं! **मिले तुम मुझे अबोध शिशु की भोली मुस्कान में! मेरे गोपाल!** मेरे कन्हाई!! माखन चोर! तब जाना मैने घर तुम्हारा! बिस्तर तुम्हारा!! विनाश की प्रत्येक रात्रि के उपरान्त तुम्हें ढंढ लेता हूँ **अब! कोमल रक्ताभ अबोध होंठ ही विस्तर है तुम्हारा!** मुखरित होती मधुर मुस्कान अंगड़ाई है तुम्हारी! फिर नेत्रों की चंचलता के साथ नृत्य करते तुम युग को मोहित कर लेते हो। मेरे माधव! मेरे गोपाल! मेरे गोविन्द!!

तत् त्वम् असि ! वह तुम हो !

मेरी धारणा के स्वरूप ! मेरी इष्टदेव ! मेरे ही प्रतिबिम्ब ! मेरी आस्था का अमर सांचा। मेरे जीवन के मात्र लक्ष्य!

वह तुम हो!

तत् त्वम् असि!

तेजोऽसि

तेज हो!

धारणा का सांचा बना, ध्यान के मार्ग से खोजने लगा मैं तुमको ; अपनी ही धारणा के सांचे में -- **और मिले तुम! हुआ साक्षात्कार!** देखा जगमग ज्योतिर्मय स्वरूप तुम्हारा! देखता ही रह गया! देखता ही रह गया!! 'तत्सक्तिुं'--सहस्त्रों सूर्यों का प्रकाश!

तेजोऽसि! तेजोऽसि!!

भले ही प्रकाशित हो सहस्त्र सूर्य मुर्दा आँख को रोशन कहाँ? तेरे ही तेज से देख सकी मुर्दा आँखें! युग से युग तक!! मौत की खामोशी को जीवन के कोलाहल में लौटा सके--मात्र तुम ! हार गये सब सूर्य ! ज्ञान! विज्ञान!!

तेजोऽसि ! तेजोऽसि !!

हे मेरी धारणा के साकार ! हे मेरे अनन्त देव!! तुम सत्य रूप प्रकाश हो! अमरत्व रूप प्रकाश हो! जीवन रूप प्रकाश हो! हे अधियज्ञ !! हे धारक-सृजक-संहारक! तुम ही तेज हो! धारणा के सांचे में ध्यानस्थ हूँ मै!

तेजोऽसि! तेजोऽसि!!

तत् त्वमसि! तत् त्वमसि!!

वह तुम हो! वह तुम हो!!

मेरी धारणा! मेरे ध्यान !! हे इष्ट देव !!

शत-शत नमन्! हे राम! हे कृष्ण!! हे माधव!!

एकोब्रह्म नास्ति!

एक ही ब्रह्म, दूसरा न कोई!

पाया जब ज्योतिर्मय दिव्य स्वरूप तुम्हारा ; झिलमिल, झिलमिल हो उठा अन्तर्मन! रोम-राम में प्रकाश की अनुभूति है! जगमग यज्ञ हो रहा है। सब -- आत्म-कुण्ड की स्निग्ध ज्वालाओं में! पाया मैने तुमको! चल दिया हूँ मिलने तुमसे ! धारणा के सांचे में, ध्यान के मार्ग से! प्रकाशित कर दिया तुमने मार्ग मेरा ! **नहा रहा हूँ मैं हिरण्यधाराओं में।**

कैसी है लीला तुम्हारी! जहाँ देखता हूँ तुम्हें पाता हूँ! माता तुम्ही हो, पिता तुम्ही हो! भाई तुम्ही हो! सखा तुम्ही हो! तुम्ही प्रयसी, पुत्र तुम्ही हो! मित्र, **शत्रु -- नही, तुम्हीं हो! तुम्ही हो!!**

पाया मैने घट-घट वासी रूप तुम्हारा! **प्रत्येक घट के आत्मा, जीवन तेज!** मात्र तुम्ही हो! मात्र तुम्ही हो!!

एको ब्रह्म द्वितीयों नास्ति!

एको कृष्णाः द्वितीयो नास्ति!!

मिट गये सब भ्रम के रिश्ते! जल गई भ्रान्तियां सारी! पहन ज्वाला (गेरूआ वस्त्र) बैठ गया हूँ सम्मुख तुम्हारे ! सारी चिंतायें जला दी है! जल गया हूँ एक चिता में मैं भी! अब तो तू ही तू है! तू ही तू है!! हे इष्ट! हे देव!! मेरी धारणा के प्रतीक!! **ध्यान के लक्ष्य! मात्र लक्ष्य!!** एको ब्रह्म द्वितीयों नास्ति!!

सम्मुख हो तुम्हारे! धारणा के सांचे मेंरे, **ध्यान के पंखों से उड़कर** समाधिस्थ हो गया हूँ! सम्मुख तुम्हारे! सम्मुख तुम्हारे!!

तत् त्वमसि!

मेरी धारणा!

तेजोऽसि!

मेरे ध्यान!

एको ब्रह्म द्वितीयों नास्ति!

मेरी समाधि!

अहं ब्रह्मास्मि !

मैं ब्रह्म हूँ!

समाधिस्थ हो गया जब सम्मुख तुम्हारे! देखा समीप से जाना समीप से!! पहचाना समीप से -- **तो हर्ष से कह उठा-- मैं भी वही हूँ! मै भी वही हूँ सम्मुख -- अपने ही। देख रहा हूँ अपने ही सांचे में -- प्रतिबिम्ब अपना तब जाना- मैं ही शरीर रूप माता हूँ! आत्मा रूप पिता हूँ!** शरीर सामिग्री को आत्म-कुण्ड में यज्ञकर्ता -- मैं हीतो हूं! शरीर सामिग्री की आत्म-कुण्ड में यज्ञ करने चल दिया हूँ! कर रहा हूँ यज्ञ सम्पूर्ण पुण्य-पाप का; सत्य-असत्य का, शरीर सामिग्री का पुनीत जल-- ढलता जा रहा है धारणा रूपी सांचे में -- उत्पन्न हो रहा हूँ मैं:-

प्रसव की पीड़ा है यह;

प्रसव का आनन्द है;

मेरे ही शरीर में

जन्म ले रहा हूँ मैं:-

यज्ञ द्वारा तेज में परिणित हो गया सामिग्री रूपी जल, ध्यान के मार्ग से, धारणा के सांचे में ढलता जा रहा है! **मेरे ही शरीर में, मैं स्वयं पुत्र बन जन्म ले रहा हूँ। मै ही माता हूँ! मैं ही पिता हूँ। मै ही पुत्र हूँ! मै ही मन, इन्द्रिय, बुद्धि आत्मा हूँ। सम्पूर्ण का अद्वैत स्वरूप -- मैं जन्म ले रहा हूँ-- मेरे शरीर मं -- अहं ब्रह्मास्मि।**

पीड़ा और आनन्द की अनुभूतियों में मैं यज्ञ कर रहा हूँ -- मैं यज्ञ हो रहा हूँ -- मेरे सांचे में-- मैं ढल रहा हूँ।

तत् त्वमसि! धारणा मेरी!

तेजोऽसि! ध्यान मेरा!

एको ब्रह्म द्वितीयों नास्ति! समाधि मेरी

अहं ब्रह्मास्मि ! यज्ञ मेरा !

सोऽहं!

मै हूँ

मुर्गी के अण्डे का जल! अण्डे के भीतर --धारणा के सांचे में --ध्यान के द्वारा धीरे-धीरे सिमटता चलता हैं ; जमता चलता है- और सांचे का स्वरूप लेता चूजा बन जाता है। फिर एक दिन--कपाल को फाड़--कमजोर लड़खड़ाती टांगों से चूजा बाहर निकल अपने कोमल पंखों को फड़फड़ाता है!

अपनी इष्ट रूपी धारणा के सांचे में, ध्यान का स्वरूप ग्रहण करता , हिरण्य जल-धीरे-धीरे जमने लगता है! यज्ञ का पकाया जल धारणा रूपी सांचे में इष्ट देव का स्वरूप पाने लगता है। जिसे भजता रहा था कल तक-- **आज उसी का स्वरूप ग्रहण करता अपने ही शरीर में जन्म पाने लगा हूँ! कल तक जो मेरा इष्ट था-- आज वह "मैं हूँ"! सोऽहं! सोऽहं!!**

ढल गया मैं अद्वैत, इष्ट, ज्योतिर्मय अमर स्वरूप में! हो गया जब स्वरूप पूर्ण मेरा! एक रोज--**'ब्रह्म' 'अण्ड' (ब्रह्माण्ड) रूपी कपाल को फाड़ -- मैं सांचे में हुआ बाहर** -- ली अंगड़ाई -- जगमग ज्योतिर्मय झिलमिलाते स्वरूप को देख मुस्कराया मैं-- और सोहम! का नाद करता सम्पूर्ण में लय हो गया! सर्वत्र हो गया। खिलौना खिलाड़ी हो गया! उपासक उपास्थ ही गया!

'तत् त्वमसि! मेरी धारणा!

'तेजोऽसि'' ! मेरा ध्यान!

'एकोब्रह्म ! द्वितीयों नास्ति' समाधि मेरी!

'अहं' ब्रह्मास्मि ! यज्ञ मेरा !

'सोऽहं!' मेरा योग

अमृतम्

अमृतम्

महाविष्णु ने त्रेता युग में अपने नाना देवताओं के साथ भूमण्डल पर अवतरित होकर महान् लीला की। असुरों एवं असुरी शक्तियों का विनाश किया। तपस्वियों, ऋषियों एवं साधकों को सत्य का भान कराया एवं उनकी रक्षा की। मनुष्य मात्र को मर्यादित किया।

लीला का रहस्य क्या है?

लीला शब्द का अर्थ है **सत्य का नाटकीय प्रस्तुतीकरण!** अर्थ से ध्येय स्पष्ट हो गया। श्रीभगवान् लीला द्वारा हमारे ही जीवन को नाटकीय ढंग से हमारे सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। बात है 'स्वर्ग' और 'नर्क' की। 'दशरथ' और 'दशानन' की। विचार करें 'दशरथ' में भी 'दश' है और 'दशानन' में 'दश' है। **यही 'दश' दशहरा और विजयादशमी में भी समाया हुआ है।**

'दश' की लीला क्या है?

'रथ' (लगाम लगाना) लिया। जिसने दश इन्द्रियों को अर्थात् दसों; दश इन्द्रियों का निग्रह (रथ) किया - **दशरथ कहलाया और जा मिला घट-घट वासी,** अजर-अमर अविनाशी, स्वयंभू, आत्मारूपी, भगवान् श्रीराम से !

'दश' इन्द्रियाँ जिसकी बनी दश मुंह ! इन्द्रियों की विषय वासनाओं में हो गया जो लिप्त - कहाया दशानन रावण ! मारा गया भगवान श्रीराम से !

स्व़ + अर्ग = स्वर्ग तथा ऩ + अर्क = नर्क

स्व अर्थात आत्मा और अर्ग अर्थात् परिधि। जो दशरथ बन आत्मा

की परिधि में व्याप्त हुआ उसे स्वर्ग हुआ। 'न' माने नहीं 'अर्क' माने सूय। जो आत्मा रूपी सूर्य को नकार कर विषय वासनाओं को दश मुंह बन बैठा उसे नर्क हो गया। **नर्क को स्वर्ग में बदलने वाला दशरथ और स्वर्ग को नर्क में ढालने वाला दशानन।**

मन ही दशरथ; मन ही दशानन ! तुमने जीता इसको तो दशरथ बन राम से मिला देगा। यदि यह मन जीत गया तुमको तो दशानन बन राम से तुम्हारा सर्वनाश करा देगा। कैसे?

जब भी धरती की बेटी-सीता, कौन है सीता ? अरे ! धरती बेटी, **प्रकृति की बेटी-यह देह तुम्हारी, यह जीव की प्रकृति ही तो भी है। जीव** मात्र ही तो सीता है ! आत्मा ही तो घट-घट वासी राम है मन की बदलती स्थितियां ही तो दशरथ और दशानन हैं।

हाँ, जब भी यह सीता, दशरथ मार्ग का अनुसरण न कर दशानन मार्ग पर चलने लगती हैं-आत्मा राम भी चल देते हैं ढूँढने स्वर्ण-मृगजीवन के स्वर्ण क्षणों का स्वर्ण मृग ! जिसे यह अपनी विषय वासनाओं के कारण नष्ट कर चला! फिर क्या हुआ?

मन दशानन बना अर्थी बाँध रस्सी से ले चला वायु मार्ग से ! लंका! दक्षिण ! पहली बार पाँव दक्षिण हुए ! चल दिये बँधी सीता की भांति श्मशान घाट ! चिता की लकड़ियों पर राम की विरह की अग्नि में जल भस्म हो गयी देह ।

भस्मी ने पानी का संग किया और जंगलों की अशोक वाटिकाओं में डोलती फिरी। पुकारती राम को ! हा राम ! हा राम !

प्रकट हो गये भगवान् राम ! प्रत्येक पेड़-पौधों के अन्तराल में बनकर आत्मा. घट-घट वासी आत्मा ही तो राम है, सो ही तो ॐ है।

अ + उ + म = ॐ

अ से अस्तित्व, तत्वधारक ब्रह्म ! उसे उत्पत्ति, सृजन, सृजक

विष्ण। म से मृत्यु, मृत्युञ्जय महेश! धारक, सृजक, संहारक-ब्रह्मा, विष्ण, महेश ! यही GOD भी है। G से जनरेटर, O से आपरेटर तथा D से डिस्ट्रायर [अलिफ, लाम, हे-अल्लाह ! धारण, सृजन और संहार की लीलाओं द्वारा सचराचर का पुनः पुनः प्रकट करने वाला आत्मा घट-घट वासी राम !]

धारक बन भस्मी को ग्रहण किया, संहारक बन अग्नियों से पवित्र किया। सृजक बन सृजन करने लगा। एक ही भस्मी वही पानी। वह अंगूर भी है, खट्टा नींबू, कड़वी मिर्च, सफेद गोभी तो काला बैगन, चम्पा कहीं, तो कहीं चमेली।

पुनः उन्हीं फलों को भोजन के रूप में एक दम्पत्ति ने ग्रहण किया और धारण, सृजन और संहार के यज्ञों द्वारा वह भोजन रक्त, मांस में बदल गर्भ में पुनः बालक का स्वरूप ले सका। अग्नि परीक्षाओं द्वारा लौटी सीता-प्रकृति-धरती की बेटी, यह देह हमारी !

गर्भ के क्षीर सागर से, **गर्भ रूपी कुम्भ से जब पुनः देह बाहर हुई नाल कटी-धनुष भंग हुआ-आत्मा राम ने प्रकट हो वरण किया इसका!** शायद इस बार दशरथ मार्ग का अनुशरण करें। जीव और आत्मा के द्वैत को योग मार्ग से अद्वैत करे।

प्रश्न उठता है दशरथ और दशानन, स्वर्ग और नर्क, उत्तरायण और दक्षिणायन, देव यान और पितृ यान क्या है ? इनका चलन कैसा है? इनकी लक्ष्मण रेखाएँ क्या हैं ?

दस इन्द्रियों का निग्रह कर दशरथ बनना, 'स्व' रूपी आत्मा सूर्य की सीमाओं में नित्य प्रवेश करना, शरीर को देवालय बनाकर स्वयं पुजारी बन आत्मा देव हेतु ही इन्द्रियों का प्रयोग तथा चेष्टा रत रहना। देह रूपी देवालय को सदा पवित्र रखना ही उत्तरायण है। यही दशरथ है। इसका यान स्वयं देव अर्थात आत्मा राम है।

देह को देवालय क्यों कहा ?

विचार करो ! मन्दिर तुम्हारी ही तो तस्वीर है। जैसे साधना में तुम पल्थी मारकर बैठते हो । समाधि लेते हो। पल्थी के जैसा चबूतरा। घढ़ के जैसा गोल कमरा सिर के जैसा गुम्बद, **जटाओं के जूड़े सा कलश** और आत्मा जैसी मूरत लो यही तो है मन्दिर ?

मन्दिर तुम्हारा शरीर, मूरत आत्मा राम और मानव रूप तुम पुजारी। आवो अब पढ़ डालें दशरथ को, देव यान को, उत्तरायण मार्ग को। पहचानें अपनी मर्यादाओं को। अपने धर्म को।

पूछो अपने आप से : -

1- जैसे पुजारी मंदिर को सदा पवित्र रखता है। कभी गन्दा नहीं होने देता-क्या तुमने इस शरीर मन्दिर को पवित्र रखा। ईर्षा, द्वेष, घृणा, व्यभिचार से गन्दा तो नहीं किया?

2- पुजारी सदा शुद्ध और सात्विक भोजन का भगवान को भोग लगाता है। शराब, मांस, अण्डा, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुएँ कभी नहीं चढ़ाता। तुमने भी कब खाया ? तुमने भी तो आत्मा राम को भोग लगाया जिसने उसे रक्त मांस में यज्ञ किया। तो जो वस्तु उनकी मूरत पर नहीं चढ़ाई जा सकती-तुम साक्षात आत्मा परमेश्वर पर कैसे चढ़ा सकते हो। सोचो।

3- क्या पुजारी मूरत के मुकुट और आभूषण चुरा कर बेच सकता है। नहीं! कदापि नहीं !! तो ये इन्द्रियाँ तुम्हारी आत्मा राम का आभूषण ही तो है। तुम इन्हें विषय वासनाओं के बाजार में कैसे बेच सकते हो? **इनका आत्म यज्ञार्थ प्रयोग करो। स्वयं को अभिशप्त मत करो।**

4- क्या पुजारी मन्दिर का मालिक है? नहीं ! मालिक तो भगवान स्वयं है पुजारी तो निमित्त है अर्थात ट्रस्टी है। उसी प्रकार सोचो

जब तुम थाली भर भोजन से भौंह का एक रोम नहीं बना सके तो इस शरीर के मालिक हो अथवा ट्रस्टी ? **निमित्त बन कर जीना सीखो।**

5- जब शरीर का स्वामित्व भगवान ने तुम्हें नहीं दिया तो तुम मकान, दुकान के मालिक कैसे हो सकते हो? अन्धता का त्याग करो। जीवन को ट्रस्टीशिप का अमृत पिलाओ स्वामित्व का अभिशाप नहीं।

6- भगवान राम ने शबरी के जूठे बेर खाये थे। आत्मा होकर भगवान आज भी हर शबरी के अर्थात जीव मात्र की जूठन को रक्त में बदलते हैं-राम भेदभाव नहीं करते हैं। तुम ऊँच, नीच, मेद-भाव के महा अभिशाप में तो नहीं फंस बैठे?

7- जिस ईश्वर ने आत्मा होकर तुम्हें तन दिया। तुम्हारी जूठन को रक्त में बदला। क्या कोई फीस अथवा तनखाह ली? बोलो**!** जब राम आत्मा होकर तुम्हारा निष्काम नौकर बना है तो यह तन किस लिये दिया? **समाज को नोचने के लिये** ? नहीं **!** ईश्वर निष्काम सेवा द्वारा यह तन तुम्हारा जो बना रहे हैं - मात्र निष्काम सेवा के लिये **!** क्या सेवा की ?

8- चोर ने चोरी की, डाकू ने डाका डाला, तपस्वी ने तप किया-राम ने आत्मा होकर सभी को समान भाव से जीवन के क्षण प्रदान किये। उन्होंने आत्मा होकर आत्मा के धर्म को ही निभाया। तुम भी दूसरों के दोषों से प्रेरित होकर स्वयं को नष्ट मत करो। अपने धर्म का आचरण करो।

9- भगवान् भी जन-जन का सम्मान तभी पाता है जब आत्मा होकर हर शबरी के जूठे बेर खाता है। **सम्मान सेवा में है, रावण की सुनहरी लंका में नहीं।** लंका न बनाओ राम जैसे सेवक बनो।

10- तुमने गाय को खूटे के साथ जंजीर से बाँध रखा है। क्या गाय जंजीर से बंधी है? एक शैतान लड़का जंजीर खोलकर ले गया। क्या गाय को दुख है ? नहीं। दुखी तो तुम हो, तुम्हारी दस रूपये की जंजीर खो गयी। तो बताओ **जंजीर से तुम बँधे थे या गाय?** इसी प्रकार तुम भौतिकताओं और वासनाओं को बाँधते नहीं हो। स्वयं बँध जाते हो। जड़त्व से बँधो नहीं। राम से बँधना सीखो !

हम नवरात्र क्यों मनाते हैं?

दुर्गा सप्तशति में माँ दुर्गा कहती हैं कि सृष्टि के आदि काल में ब्रम्हा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवताओं ने मेरा आवाहन किया तो मैं प्रकट हुई। अगले अध्यायों में वे ही विष्णु का वरण कर लक्ष्मी तथा रूद्र का वरण कर उमा, पार्वती कहलाती हैं। अगले अध्यायों में माँ कहती हैं कि मैंने ही ब्रम्हा, विष्णु महेश आदि देवताओं को प्रकट किया। पुनः कहती हैं कि वे आदि कुँआरी हैं। उन्होंने प्रकट किया तो पुत्री हुई। उनका वरण किया तो पत्नी बनी। उनको प्रकट किया तो माँ कहलायी। फिर भी रही आदि कुँआरी?

लीला रहस्य को समझें? सृष्टि के आदिकाल में ॐ 'अ' (ब्रम्हा) + 'उ' (विष्णु + म्(महेश) ने मेरा आवांहन किया तो मैं ॐ अर्थात आत्मा रूपी दुर्गा प्रकट हुई। जगत लीला में मैं आत्मा रूपी दुर्गा ने पत्नी बनने का भी तो अभिनय किया। **आत्मा होकर मैं पुरूष तथा स्त्री दोनों में ही समान रूप से व्याप्त हूँ।** इसलिए पत्नी भी बनी तथा इस दामपत्य जीवन में जो भी सन्तानोत्पति हुई वह मुझ आत्मा रूपी दुर्गा द्वारा ही तो हुई। इसलिए पत्नी भी बनी तथा इस दाम्तत्य जीवन में जो भी सन्तोत्पति हुई वह मुझ आत्मा रूपी दुर्गा द्वारा ही तो हुई। क्या कोई स्त्री एक अंगुली का टुकड़ा बना सकती है? **मैं ही तो आत्मा होकर जगत जननी हूँ।** मैं ही तो सचराचर को प्रकट करने वाली हूँ। इस प्रकार मैं माँ भी बनी। पुनः आत्मा होकर मैं निष्पाप हूत्र। वासनाओं से दूर हूँ। इसलिए

होकर भी आदि कुँआरी हूँ। **आत्मा ही नर लीला में 'राम' है और नारी लीला में आत्मा ही दुर्गा है।**

हम नवरात्र यूँ मनाते है कि मैं जो जीव हूँ मां दुर्गा रूपी ज्वाला में, इस मन दशानन की इन्द्रियों को वासनाओं को पूजा, व्रत तथा हवन द्वारा संबल पूर्वक नष्ट करता हूँ। नव दिन नव इन्द्रियों की वासनाओं को आत्मा रूपी दुर्गा यज्ञकुण्ड में भस्म करता हुआ दसवें दिन मन दशानन का पुतला जला देता हूँ। आज दशानन जल गया है। विषयों के अन्धकार से मैं, माँ दुर्गा की कृपा से, मुक्त होकर अब राम को राह चल दिया हूँ।

नवरात्र में हम जौ (यव) बोते हैं ! क्यों? इसलिये कि यदि आत्मा राम जोतेंगे तो यज्ञ को जीत होगी। जौं रूपी बीजों में माँ दुर्गा (पुनः आत्मा) यज्ञ को ज्वाला बन प्रकट होगी। सड़ी हुई मिट्‌टी जीवन्त कोपलों में यज्ञ होकर प्रकट होगी।

यदि जीत गया रावण तो माया का विस्तार होगा। बीज सड़ जावेंगे। कुछ प्रकट न होगा। **जौं बीज कर मैं यही देखता हूँ कि मेरे घर में आत्मा राम, आत्माग्नि दुर्गा, विराजते हैं अथवा मायापति रावण।**

अब उठो ! जलते हुए दशहरे के रावण के सामने खड़े हो जाओ। स्वयं से पूछो। कही तुम धोखे से अपना पुतला स्वंय तो नहीं जला रहे हो?

यदि तुम दश इन्द्रियों को दश मुंह बनाकर दशानन रावण बन बैठे हो तो तुम्हारा शरीर लका हो गया। जीव रावण तो तन लंका। इसका नित्य दहन होगा- ईर्षा, द्वेष, घृणा, रोग, विपत्ति, अभाव और भय से। फिर एक दिन-दशहरे के रावण की तरह चिता की लकड़ियों पर भष्म होगा। देखो, देखो! जलता हुआ रावण ।

यदि तुम दश + रथ दशरथ बने तो तन हुआ अवध ! दशरथ अवध में राज्य करते हैं। **अवध अर्थात जिसका कोई वध न कर सके!**

फिर आई अमावस की काली अन्धेरी रात। हम मनाते हैं दीपावली। क्यों ?

मैं नवरात्र मना आया हूँ। विजयादशमी में मन दशानन को जला आया हूं। मेरे जीवन का हर कोना आत्मा राम एवं माँ दुर्गा को दीप्ति से उजियारा हूँ। अन्धेरे की बात मत करो ! मन के विषयों को मार कर दशानन से दशरथ बना हूँ। हर ओर जगमग ज्योति हैं। मेरे भीतर के रोशनी को बाहर भी प्रतिविम्बित करो। प्रकाश ने अन्धेरे को पराजित किया है। जगमग दीप जलाओ। जीत गया हूँ। खुशियां मनाओं। पटाखे चलाओं। फुलझड़ियों में मुस्कराओ। जैसे जीते थे भगवान राम त्रेता युग में। **मैने भी जीत के त्रेता युग में प्रवेश पाया है। ज्योति की राह चल दिया हूँ। दीपावली मनाओ।**

श्री भगवान ने कहा मृत्यु तो मात्र वस्त्र के बदलने जैसा है। जैसे पुराने वस्त्रों को उतार व्यक्ति नये वस्त्र धारण करता है। वैसे जीव पुरानी देह को त्याग नयी देह धारण करता है।

परन्तु जिसने विषयों में फंसकर अपने संस्कारों, विचारों, संकल्पों और परम् उद्दश्यों को हत्या कर दी। उसका उद्धार कैसे होगा ! **उसने वस्त्र बदला नहीं। वह तो घृणित मौत मर गया।**

श्री राम लीला के पात्र
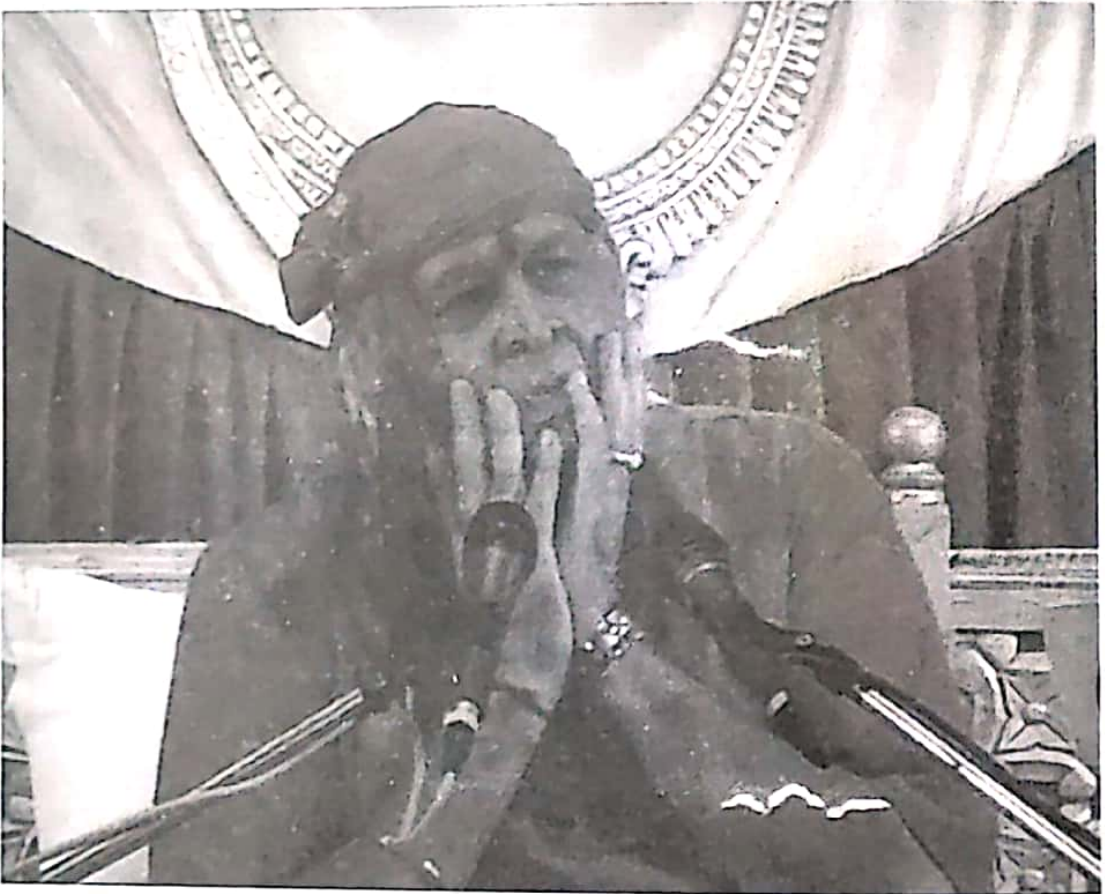
स्वामी सनातन श्री

श्री राम लीला के पात्र

"हमारे नायक राम, घट-घट वासी अजर-अमर अविनाशी, हमारी देह में वास करने वाले; आत्मा होकर- सर्व व्यापी श्री राम ही है।"

लीलावतारः- जब हम स्वयं को नही समझ पाते है- तो परमपिता परमेश्वर एक अच्छे सुघड़-अध्यापक की भांति रहस्यलीलाओं द्वारा- नितान्त हमारी ही कथा सुनाते है, हर पात्र के रूप में हमी होते हैं वहाँ पर, हमारे नाना विचार, नाना दिशाएँ, नाना-मान्याताये़ं ही व्यापक स्वरूप दिखाती है।

हमें अद्वैत करना होता है, नायक श्री राम के चरित्र से।

भगवान सूर्य उत्तरायण हुए।
वेद व्यास का तप पूर्ण हुआ
उत्तरायण पुस्तिका में स्वामी जी,
श्री कपिल श्री, श्री विशाल श्री
एवं आश्रम से 'उत्तराण' हो गये।
- नित्य की भांति सेवारत् हो गये।
परिक्रमा करती पृथ्वी, जब देवलोक की ओर आ जाती है।
क्षीर-सागर में दो बार प्रवेश कराने के बाद
- आज मेरा उत्तरायण हो गया।

हम अद्भुत हष्टा, पूर्ण वैज्ञानिक और मनो वैज्ञानिक होकर- 'संत' तभी सकते है, जब हमारी पढाई की शुरूआत -

हमारे जगत-व्यवहार में पूर्ण रूपेण आत्मा घट-घट वासी श्री राम के व्यवहार का अनुसरण करने से होती है।

हम जगत-व्यवहार और परमेश्वर, अर्थात परम-सत्ता को घट-घट वासी मान कर अर्थात ईश्वर और जगत एक (अद्वैत) है, चले, तभी हम अपनी मनुष्यता को सजा संवार पायगें

इसके लिये, इस प्रकार का 'संत' बनने के लिए, हम को सर्वप्रथम दशरथ (दसों इन्द्रियों पर नियंत्रण पा लेने वाला) बनना होगा।

अतः सबसे पहले, हमें अपने आप पर आत्म-विश्वास करना होगा। यह अनुभव करना होगा कि मैं बहुत ही महान हूँ क्योंकि मैं ईश्वर को भी धारण करता हूँ, वे ही आत्मा होकर मेरे भीतर बैठे है- जब मेरे भीतर सचराचर के स्वामी नित्य संगी बन बैठे हैं, तो फिर मैं किसी से भी छोटा नही हूँ। वे "भरत" है और मैं उनकी गोद में बैठा उनका पुत्र "भारत" हूँ।मेरी शक्ति, सत्ता, सामर्थ्य सब मेरे अन्दर बैठे अनन्त, शक्तिशाली आत्मा-सूर्य से आ रही है।

मेरी रोशनी, तो मेरे भीतर से बाहर आ रही है, 'सूरज' में सदा एक ही होता है। सूरज के पीछे दूसरा सूरज नही होता है- अतः मेरा आत्मा सूर्य ही एकमात्र सूर्य है- मुझे वही बनना है मै बेटा हूँ उसका। मुझे उसी की दी सामर्थ्य से उसी को प्राप्त करना है, उसी की दिखाई 'राह' का अनुसरण करके।

जो ईश्वर सम्पूर्ण सचराचर में व्याप्त है वही मेरे अन्तर में भी है- समीपस्थ है- मुझे उस समीपस्थ से मिलना आसान लगता है, अतः मैं अद्वैत करूँगा उसी से- यही मेरा संकल्प है और इसके लिए मैं सक्षमता से सक्षम हूँ, भरत-पूत्र भारत हूँ।

अब मैं पाता हूँ, सीपी में बन्द मोती की तरह तुम्हे है प्राण, हे आत्मा हर शरीर में यज्ञ करते हुए आत्मा रूपी अग्नियों में।

अब, **"सीय राम मय सब जग जानी"** है।

अब इतना सब मानसिक रूप से जान पाने बाद, अब मेरे लिए आगे का 'पाठ' क्या हो, जिससे कि मैं अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को इस आत्मा रूप में ढाल सकूँ-आत्मा ही बन जाऊँ, उससे पूर्ण अद्वैत हो जाये मेरा।

अब आवश्यक हो गया है कि मैं समझू कि मेरा इस समय स्वरूप क्या है, जिसको मुझे आत्मा रूप में ढालना है।

इसको जानने के लिए जब मैं चलता हूँ तो एक ही उत्तर सामने आता है कि मेरा स्वरूप किसी भी क्षण वह होता है - **"जिस किसी भी विचार में मैं खोया होता हूँ, उस क्षण मेरा स्वरूप वह विचार का स्वरूप ही होता है।"** अगर मेरा सारा चिन्तन छज्जे से टपकती एक बूंद पर **(एकाग्र है, तो मेरा स्वरूप उस समय "बूंद ही ही है।** इसकी सत्यता मैं दैनिक जीवन में भी परख लेता हूँ, क्योंकि अगर किसी किताब में मैं पूर्णतया निमग्न हूँ, तो कमरे में कौन आया, क्या कह गया, रेडियों में क्या बज रहा है, सिगरेट की चिन्गारी कहाँ पड़ कर सुलग रही है आदि का मुझे कुछ भान ही नही होता है, क्योकि मेरे उस समय के स्वरूप में यह सब है ही नही, मेरा स्वरूप तो उस समय किताबों के लिखे विचारों से अद्वैत कर गया होता है।

तो जब मेरी वर्तमान स्थिति यह है और मुझे बनना सर्व समर्थ, अन्तर्यामी, यज्ञेश्वर आत्मा है, जिसे मैं अभी इस स्तर पर केवल काफी मानसिक खोज-बीन, जाँच पड़ताल के बाद कभी-कभी कुछ क्षण के लिए ही समझ पाता हूँ - क्या करूँ, कैसे करूँ कि मेरा अगला कदम इस दिशा में सार्थक प्रयास हों।

इसके साथ ही साथ एक बात और भी अपनी बुद्धि, जिससे विचार उपजते हैं, की मेरी समझ में आ जाती है कि **मेरी बुद्धि, सदैव सगुण, साकार रूप का सहारा लेकर ही चल पाती है,** बिना सगुण चित्र मेरे दिमाग में आये, मेरी दिमाग में कोई निर्णय ले पाने की स्थिति ही नहीं उत्पन्न हो पाती है। जैसे घर या पत्नी के बारे में कोई बात आते ही पहले मेरे मानस पटल पर उनका चित्र उभर कर आता है फिर आगे की प्रक्रिया चलती हैं इसी प्रकार सर्व समर्थ आत्मा भगवान कहने पर जब तक कोई सगुण-साकार मूर्ति से मेरा कोई सम्बन्ध नही स्थापित हो जाता - मैं उनके

बारे में कोई विचार उत्पन्न ही नही कर पाऊगाॅ तो अद्वैत किस से करूँगा ?

तो इसके लिए मैने अपनी आत्मा की प्रतिमूर्ति जिस किसी भी रूप में जो मुझ, मेरे चित्त को आकृष्ट करे वह मैने सामने रखली और यही मेरी आत्मा है ऐसा मानकर उस पर एकाग्र होने लगा।

यहाॅ पर एक सूक्ष्म विचारणीय बिन्दु यह भी है, 'आत्मा' का रूप या मूर्ति में वही लेता हूॅ- जो मेरे चित्त को अच्छी लगती है ऐसा क्यों? इसलिए कि उस वस्तु का चित्र उतनी ही स्पष्टता से उभर कर मेरे मानस पटल पर आ जाता है , जिससे मैं 'आकृष्ट' हो चुका होता हूॅ।

इस प्रकार सर्वसमर्थ लुभावनी मुर्ति बना लेने की आवश्यकता पड़ती हैं। अब उसमें सर्व-समर्थ, जीवन्त करने की प्राण-प्रतिष्ठा करता हूॅ। कि यह मूर्ति ही सर्व शक्तिमान है। ऐसा क्यों? इसलिए कि मेरा वास्तविक लक्ष्य तो सर्व-व्यापी आत्मा है, जो निरन्तर यज्ञ कर रहा है, और वही मेरे अन्तर में व्याप्त है, और उस अन्तर्यामी की ही यह मैने मूर्ति बनाई है तो इसको प्राण प्रतिष्ठित तो करना ही होगा और उसमें "पिता" की सी श्रद्धा, आदर, प्यार, अनुशासन आदि के आवश्यक सम्बन्ध भी स्थापित करने होंगे।

अब उसकी स्तुति करता (अर्थात सम्बंध बनाता) मैं उसी मूर्ति को ध्यान में लाने लगता हू।

अब जरा सोचे कि जब मैं ऐसा करता हूॅ तो मेरे अन्दर क्या हो रहा होता है? मेरा स्वरूप जो मात्र एक विचार है, अब इस सर्वसमर्थ जीवन्त मूर्ति रूपी विचार में बदल रहा होता है, और जितनी देर मैं उसके ध्यान में सम्पूर्ण एकाग्रता ला पाता है- उतने समय तक मेरा स्वरूप वही रहता है। "आत्मा से तादात्म्य रूपी लक्ष्य की राह में" आरिम्भक अवरोध हटाने का इससे अधिक सुगम मार्ग वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दूसरा हो ही नही सकता।

अतः मै भक्त होकर, मूर्ति में परमेश्वर के पर्वताकार व्यक्तित्व की, तथा गुणों की कल्पना करता हूॅ। साधना **(विचारो को साधता, नियन्त्रित करता, एकाग्र करता)** की रस्सी से पर्वतारोहण करने लगता हूँ। साधना अद्वैत होती है। मूर्ति के पर्वताकार व्यक्तित्व को आत्मस्थ करता मैं अपने

व्यक्तित्व को ऊँचा और महान बना ले जाता हूँ। यही मूर्ति पूजा का सत्य-स्वरूप है।

यह तो मार्ग का स्पष्टीकरण हुआ अब प्रश्न उठता है कि आत्मा से तादात्य्य कैसे किया जाय, अर्थात मार्ग में, क्षण-क्षण पर आने वाली विपरीत परिस्थितियों से कैसे निपटा जाय? तथा पूर्ण वादात्म्य पाकर भी मूझे करना क्या होगा? मेरा कर्तव्य तब क्या होगा?

इसके लिए वेद ने हमारे प्रति कहा:-

हम सब ग्रन्थ (वेद, बाह्मण, आरण्यक, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि) मात्र एक विश्वविद्यालय की कल्पना के रूप में प्रकट किये गये है। जैसे विश्वविद्यालय के ग्रन्थों के ज्ञान को पढ़कर, उसको प्राप्त होकर विद्यार्थी को उसका उपयोग, स्वतंत्र होकर विश्वविद्यालय के बाहर के जीवन में करना होता है, उसी प्रकार की ये सब पाठ्य पुस्तके है, हम मनुष्यों के लिए। इनका उद्देश्य है कि हम इन ग्रन्थों को अपने बौद्धिक स्तर के अनुरूप ग्रहण करें, पाठशाला की भांति कक्षा-कक्षा आगे बढ़ते हुए, अपने बौद्धिक-स्तर को पूर्ण परिपक्वता प्रदान करें। इस विश्वविद्यालय से पारंगत हो, पूर्ण परिपक्व होकर मूल-ग्रन्थ रूपी प्रकृति को पढ़ने के लिए, **स्वयं को जगाने के लिए** बन के ऋषि हम, ईश्वर द्वारा लिखी इस पुस्तक(प्रकृति) को पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करें। इस प्रकार सारे ग्रन्थ एक विश्वविद्यालय की कल्पना के रूप में प्रकट है, अन्यथा मूल धर्म ग्रन्थ तो प्रकृति ही है।

इस प्रकार हमारे स्वयं निज के अध्ययन में क्षण-क्षण आने वाले विरोधाभासों का समाधान इन अनेको गन्थों के माध्यम से हम कर सकते है।

जब कभी हमारा बौद्धिक-स्तर इतना गिर जाता है कि हम उपरोक्त पाठ्य-पुस्तकों के अंश भी नही समझ पाते, तो उस विषम स्थिति में हमकों उबारने की मदद देने के लिए, परमपिता परमेश्वर एक अच्छे सुघड़ अध्यापक की भांति लीला करके नाना उदाहरण, उद्धरण प्रस्तुत करके, उन पाठ्य-पुस्तकों के अंशों को स्पष्ट करता है। - रहस्य लीलाओं द्वारा। **रहस्य-लीला शब्द का अर्थ है,** हम को हमारे ही जीवन के विभिन्न

रहस्यों को ईश्वरीय लीला के रूप में प्रदर्शित कर के, हमारे जीवन को सूक्ष्म-ज्ञान से पारगंत कर, हमे अपनी पूर्ण पहचान कराना। हमको अपने निज स्वरूप का सन्देह रहित परिचय देना। यह बतलाना कि हम मनुज हाड-मास के पुतले मात्र ही नहीं है। हम सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का पूर्ण तथा व्यापक छोटे से चित्र है। सारे सचराचर में जो जो कुछ है, वह सब सूक्ष्म होकर हम में समाया हुआ है। कितने व्यापक है, हम। हमको हमारी पहचान उद्देश्य है इन लीला-ग्रन्थों का।

संसार को पहचान लेना कठिन नही है। अगर हम स्वयं को जान लें तो एक बहुत ही दुर्लभ उपलब्धि को प्राप्त होकर बहुत ही भाग्यवान बन जये।

जीवन
आत्मा-राम

घट-घटवासी अजर-अमर अविनाशी आत्मा ही, परमात्मा का लीलावतार है। आत्मा ही पुनः परम होकर परमात्मा बनती है - यही करना लक्ष्य है हमारा।

जड़ता
प्रकृति-सीता

सम्पूर्ण प्रकृति जो जड़ है, वही धरती की बेटी सीता है। मेरे अन्दर यह तन मेरा, मेरी प्रवृत्ति, मेरी प्रकृति ही सीता है।

विनाश
माया-रावण

मेरे अन्दर विषाक्त मन ही रावण है, यह भटकाव की रावण है।

ऋषि याज्ञवल्कः- ये त्रेतायुग में श्री राम कथा के पूर्व के ऋषि है। मुनि याज्ञवल्क श्री राम कथा के अन्तरात्मा है। जो यज्ञ की ज्वालाओं को वस्त्र रूप धारण करे, उसे संस्कृत में याज्ञवल्क कहा जाता है। इस प्रकार "मुनि याज्ञवल्क" उस घट-घट वासी आत्मा को, उस यज्ञ को स्पष्ट करते (ता) है।

आत्मा- जो यह की ज्वालाओं को ही आवरण बनाये है। जो यज्ञ से ही अपना स्वरूप लेकर प्रकट होता है। यज्ञ ही जिसके जीवन के प्रत्येक क्षण में निरन्तर होता है और यज्ञ की रश्मियों सा सर्वांग स्निग्ध है।

जब मन हो दशरथ और जीवन- वृत्ति कौशल्या (अनन्त पीड़ाओं को सहन कर भी जो दूसरों का सुख चाहे) **तो आत्म-तत्व राम "प्रकट" हो जाता है।**

मुनि बाल्मीकि :- यह पहला स्तर गृहस्थ का है। गृहस्थ धर्म की सार्थक जीवन की कला सिखाते है। संसार रूपी बाम्बी (विषयन्वासनाओं काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, असक्ति, अज्ञान संकीर्णता, स्वामित्व, अहं, वैभनस्य, दुःख, पीड़ा, अतृप्ति, ममत्व) से डरो नही, भागों नही, कला पूर्ण जिन्दगी जीना सीखों सूखी जिन्दगी में श्री राम रस भरों। दीमक भाग जावेगे।

यह बीज-मत्र है- तक्षण धारण करो।

धर्म की राह - कलात्मक जीवन है।

सुख का हेतु- परिपक्व मानसिकता है।

जब तक हम बाध्य जीवन में पूर्ण परिपक्व मानसिक अवस्था (प्रतीक गणपति) को प्राप्त नही होंगे, अन्तर्मुखी होकर ध्यान अथवा समाधि की किसी अवस्था को कदापि नही पा सकते।

ऋषि विश्वामित्र :- यह दूसरा स्तर, वानप्रस्थ का है। अतृप्तियों को और बदले की भावनाओं को, अर्थात मारीच और ताड़का को, जीवन से मिटाये बिना हम ऋषि विश्वामित्र के स्तर को "प्राणी मात्र का कल्याण चाहना एवं जन कल्याण में निरन्तर प्रयत्नशील रहना" नही प्राप्त हो पाते है।

जब हम प्राणीमात्र में ईश्वर का भाव ले आये तथा हर स्थिति में तृप्त महसूस करे तब हमें समझना चाहिए कि ताड़का तथा मारीच हमारे जीवन से दूर हो पाये है। इसकी वास्तविक परीक्षा तब है, जब हम कभी

अपने अहित करने वाले का भी, बुरा, स्वप्न में भी न चाहें तथा, कभी अतृप्तियों हमें परेशान न कर पाये। **(चिन्ता का कारण न बने, केवल चिन्तन, तत्पश्चात कर्म की ओर अग्रसर होते रहे)**

जब ऐसा हो पायेगा, तभी हममें प्राणी मात्र की सेवा का भाव जग पायेगा और सबमें एक राम देखते हुए हम अपने पत्थर बन रहे इस जीवन क्षणों को जीवन्त अहल्या का रूप दे पायेगे। अर्थात हमारी जिन्दगी तब मोक्ष परक हो पायगी।

जब तक जीवन प्राणी मात्र को समर्पित सेवओं को अगीकार नही करता उसे आत्मदर्शन की प्राप्ति नही होती।

ऋषिः- शब्द का अर्थ 'साधक' होता है।

महर्षिः- शब्द का अर्थ परम् उच्च-कोटि का 'साधक' होता है।

राजर्षिः- शब्द का अर्थ जो आत्मा की स्निग्ध ज्योतियों का वरण कर गया हो।

ब्रम्हर्षिः- शब्द का अर्थ जो आत्मा की भांति सृष्टि संचरना में समर्थ हो गया हो।

मुनिवशिष्ठः- (यह तीसरा स्तर संन्यासी का स्तर है) जिसने अराध्य को ही सब कुछ मान लिया है, जो अपने इष्ट में ही जीवन का पत्येक क्षण जी रहा है, उसे वशिष्ठ कहते है।

मुनि वशिष्ठ श्री राम-कथा का अन्तर हृदय है। इष्ट में बसकर जीने वालों का जीवन सार्थक है।

वेद के अनुसार- **देवयन्तों यथामतियच्छा विदद्वसुम् गिराः। महामनूषत श्रुतम्।।**

आत्मवत् हो गया जो-कैसे?- जिसकी मति आत्मा में व्याप्त होकर निर्मल हुई, जिसकी विद्वता में, कर्म की सम्पूर्ण अग्नियों में तथा जिसकी वाणी में, एक आत्मा क्रियाशील हो उठी, वही अनन्त पिता परमेश्वर को पाकर अनन्त हो जाता है।

इस स्तर पर केवल मानसिकता ही मेरे अराध्य से नही जुड़ती है, वरन् सर्वागं अपने अराध्य में अंग अंग में रोम रोम में धारण करता हुआ मै

वशिष्ठ हो जाता है। तीसरे स्तर पर अपने ही अंतर में जलने की, आत्मा-ज्योतियों में जलकर एक हो जाने की इच्छा हो जाती है।

देवर्षि नारदः- मेरी यह वह स्थिति है जब मैं अपने अराध्य को संर्वाग बसाता चलता, फिरता, उन्ही, आत्मा नारायण की स्तुति परिक्रमा करने लगता हूँ। यह सब करते करते सन्यासी होने के उपरान्त भी; कभी-कभी यह इच्छा जाग्रत हो जाती है, कि मैं स्वयं नारायण बन बैठूॅ।

ऐसा तब होता है, जब इस 'विश्व' के प्रति मेरा खिचांव आत्मा नारायण के प्रति खिंचाव से बढ़ जाता है और यह स्थिति तब आ पाती है जब इसके पीछे, यह भाव आ जाता है कि मैं तो नारायण का सबसे समीपस्थ भक्त हूॅ। मुझसे अधिक भाग्यशाली और कौन है? केवल नारायण ही मुझसे बड़े है। क्योंन मैं स्वयं नारायण का रूप ही पा लूॅ। जिससे मैं इस विश्व का सर्वेसर्वा बन बैठूॅ। स्वयं नारायण ही बन जाऊॅ।

सक्षेप में, मैं नीलगगन में तारा तो बन चुका हूॅ, क्यों ने अब सम्पूर्ण नीलगगन ही मैं बन आऊॅ।

यह सन्यासी की अन्तिम परीक्षा है।

मैं अब अर्न्तहृदय में स्वामी जी, स्वामी जी, के स्थान पर, "स्वामी जी मैं स्वयं हूॅ" भजने लगता हूॅ। अपने अराध्य को समाप्त कर स्वयं अराध्य बन बैठना चाहता हूॅ।

जब कि तन का एक रोम तो बना न पाया, तो अभी मैं ज्ञानी भी कहॉ हूॅ। - वास्तविकता है। मैं सब भूल जाता हूॅ- मै अपने भक्त होने के (समीपस्थ) अहम में इतना खो जाता हूॅ कि महर्षि बाल्मीकि का स्तर छोड़ देता हूॅ और तभी (दम्भ रूपी दीमक) का शिकार हो जाता हूॅ।

नारायण का रूप लेकर भी नारद तो नारद ही रहेगा न। नरायण तो नही होगा। नारायण का मात्र दिखावा ही होगा-

इसी को ग्रन्थ में मिथ्या-वासुदेव के रूप में दर्शाया गया है।

इसीलिये, ज्योतियों के मार्ग में भी अपना ध्येय लक्ष्य भी स्पष्ट कर लेना चाहिए।

लक्ष्य होना चाहिए, **तत्सविर्तु आत्मा में शरीर सामग्री को हवन**

कर, ब्रह्म-कपाल से प्रकट होना, तथा उससे पहले सदैव अपने अराध्य के चरणों में बैठना और अकेले में उनके शरीर रूपी क्षीर-सागर में व्याप्त हो पाने की कामना करना, नील गगन में एक नक्षत्र की भाति ही स्थापित होना, लोटे के जल का सागर में गिर कर व्याप्त हो जाना। बस, मात्र यही अधिकतम लक्ष्य हो सकता है, मनुज शरीर से उछल कर अगली क्लास में जाने का। उसके बाद तो क्षीर सागर में पढाई होगी। केवल मिथ्याभिमान ध्येय स्पष्ट नहीं होने देता।

श्रीराम कथा का उद्देश्यः- जब भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से विलग होकर, मोह और वासना के दलदल में फस जाती है, तब नारायण का लीलावतार लेना परम आवश्यक हो जाता है।

भक्ति को "ज्ञान और वैराग्य" से पुष्ट करने; मोह और वासना के दलदल को मिटाने के लिए।

ऋषि कुमार श्रवणः- कान से सुनी बात अधिक असर कर जाती है, और प्रत्यक्ष का वर्षो का व्यवहार धूमिल हो उठता है। परछाइयॉ चेहरे बन जाते है, और चेहरे परछाइयॉ। यही तो जीवन का अभिशाप है।

कान को आँख बनाने की वृत्तियाँ, धीरे-धीरे, संशय और भ्रम को भी आंख बना लेती है। श्रृत को दृष्ट करना सीखो। जिसने श्रुतियों को दृष्टा बन के देखा उसका ब्रह्मज्ञान ही सार्थक है।

"नारायण को नारायण ही भजो"(नारायण से नारायण को ही मांगो), उनसे अन्यथा कुछ मॉगना अन्धापना ही तो होता है। अपने तपरूपी बेटे की रक्षा करो, वही तुम्हें लोक-लोकान्तरो की सैर करायेगा वही मोक्ष आदि परमपद प्राप्त करायगा।

निषाद वृत्ति को श्रापः- निरपराध जीवो की हत्या करने वाली वृत्ति के प्रति है। सचराचर में जब भी, जोभी, बिना अपराध के निरीह पशु-पक्षियों को असहाय दीनों को सतायेगा। उन्हे मारेगा, वह नित्य निरन्तर कभी भी शान्ति को प्राप्त नही हो सकेगा।

इस ईश्वरीय न्याय के लिए, देवता, मनुज सब एक समान है।

शिव और सतीः- "मन सशंय रहित हुआ किसका?" आत्मा को संशय

हुआ कब?

इसलिये अगर हमें अपनी बुद्धि के संशयों का निवारण करना है, तो उसे 'मन' की अनुगामिनी नही बनने देना है, बल्कि उसे आत्मा के संग ही रखना होगा, तब संशय ही समाप्त हो जायेगे, निवारण का प्रश्न ही नहीं उठेगा।

"आत्मसंगी":- बुद्धि को सदैव आत्मा से प्रेरित उसी के द्वारा किये जा रहे यज्ञ की शक्ति से चालित- अतः आत्मा की भांति ही, उसका प्रयोग करने में लगाना होता है। जब इस सचराचर रूपी बाग का मालिक परमेश्वर, इसे स्वयं बना रहा है, तो सत्य-रूपी बेटा मैं तभी तो हो पाऊगॉ, जब मेरी बुद्धि, उस बाग के मालिक की दिखाई राह का अनुसरण करने में लग जाय अर्थात **उस बाग का माली मैं भी बन जाऊ,** उसकी देख-रेख, सेवा में लग जाऊँ। कैसे?- मिला दे स्वयं को सत्संग की मिट्टी में। (अर्थात **अपने अहम् को शून्य कर दे** इतना गुरू-जनो के प्रति झुक) राह को सब कुछ छोड़ कर समर्पित हो जा ज्ञान-प्राप्त कर।

हरि जल से सिंचने दे स्वयं को (जब अहम् शून्य हो जाय तो उसमें केवल हरि रूपी नाम का जल ही भरे, जिससे यह शून्य हुआ अहम् रूपी बीज, पानी हरि रूप का पा पाकर, अन्न के बीज सा फूलना प्रारम्भ करे)

आचरण की पवित्र खाद लगा (बाहर से भी जो मिट्टी) उस फूले हुए बीज के सम्पर्क में आये, वह भी हरिनाम से परिपूर्ण हो।

वासुदेव रूपी सूर्य प्रकाशित हैं। (नित्य ही उस अमर आत्मा यज्ञेश्वर का साथ प्राप्त है-उसी की ताकत से तो फूले हुए बीजो के पास गीली मिट्टी के संग के कारण-अंकुर फुटते है। तो फिर

-अमरत्व के अंकुर फोड़ (अपनी अमरता का आभास होने लगेगा मुझे स्वयं तब और यही प्रक्रिया जब चालू रहेगी तो यह पौधा बढ़ता जायेगा और

-फिर मेरे पास ईश्वरीय आनन्द की पत्तियॉ है।

-तपस्या की शाखाएँ है- (जीवन की हर परिस्थिति मुझे तपस्या

कराती, पुष्टता प्रदान करती है)

और मोक्ष के पत्ते है- (ईश्वरीय आनन्द की पत्तियॉ ही बढ़ते बढ़ते मोक्ष की अनन्तता में रूपान्तरित हो जाती है।)

साधना (भक्त) के चार स्तर

पहला स्तर (जन्म):- यह भक्ति का आरम्भ है। जब मैं "ईश्वर" के प्रति भावनाओं को उत्पन्न करता हूॅ। इससे पिछले जीवन में मैं भगवान के अस्तित्व को स्वीकारता था, **परन्तु केवल तब, जब कुछ, मेरी बुद्धि से परे होता दिखाई पड़ता था।** मेरा अपना 'काम' लक्ष्यहीन होता था, भगवान का उसमें वास्तविक रूप से कही भी कोई सम्मिंश्रण नही होता था।

जब पहली बार मैं जान पाता हूॅ (केवल मानसिक विचार के रूप में) कि 'वे' तो मेरे समीपस्थ सम्बन्धी है और वे ही चारों ओर, सर्वत्र, विभिन्न रूपों में, अलग अलग चारित्रिक व्यक्तित्व का मुखौटा लगायें, लीला कर रहे है, तो मै उनकी एक मनचाही इष्ट रूप में मूर्ति बनाता हूॅ, उसमें भावना करता हूॅ कि ये ही वे है जो चारों और सर्वत्र, मुझमें भी, प्रकट है।

पहली बार मैं 'भक्त' होकर भगवान की ओर झुकता हूॅ।

दूसरा स्तर (बाल्यपन):- फिर मैं उनको निरन्तर याद करता एक जीवन-लक्ष्य को धारण करता, अपना काम करने लगता है।

धीरे-धीरे इस प्रकार का अभ्यास करते-करते भगवान रूपी विचार मेरे विचारों में प्रमुखता पाता जाता है- उनकी महत्ता, सर्व समर्थता, का मैं कायल होता जाता हूॅ और फलस्वरूप मैं उनके प्रति नतमस्तक होता चला जाता हूॅ।

जब मेरे विचार मूर्ति में, पूजा के, ध्यान के, क्षणों में पूर्णतया एकाग्र हो पाते तो, **कभी कभार मुझे मूर्ति में, मुझे मेरे इष्ट के सजीवता** से दर्शन की एक झलक भी मिल जाती है।

इतना सब होने तक मेरी साधना का भक्ति अभी बाल्यपन ही है। कयोंकि अभी मेरी भक्ति मात्र उस इष्ट मूर्ति के प्रति है, तथा मेरी भक्ति का बाकी संसार से, मेरे बाहर के आचरण-व्यवहार से कोई भी सम्बन्ध नही है। **भक्ति और संसार दोनों अलग-अलग खड़े है।** इस भक्ति को **बाल सुलभ**

भक्ति कहते है।

तीसरा स्तर (यौवन):- अब मैं व्यावहारिक रूप से मूर्ति के साथ साथ, सचराचर में भी अपने अराध्य को भजने (देख पाने का अभ्यास मात्र) लगता हूँ।

मेरे मस्तिष्क में यह विचार 'घर' कर चुका है कि यह संसार मेरे प्रभु का बनाया हुआ है। सर्वत्र, सबमें ईश्वर ही आत्मा होकर वास कर रहे है, तो मुझे उनका सर्वत्र, सबमें अनुभव करने की उत्कष्ठा, जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है- और मैं प्रतिक्षण हर परिस्थिति में हर व्यक्ति में, हर प्राणीमात्र पेड़-पौधे में उनका दर्शन पाने को उत्सुक हो उठता है- पूरे दम-खम से इस अनुभव की प्राप्ति के लिए जुट पड़ता हूँ।

साथ ही साथ यह विचार भी जाग्रत होता है, कि जैसे मैं एकान्त में मूर्ति के सम्बन्ध में जितना प्रेम, श्रद्धा, नम्रता पूर्वक उनकी पूजा करता हूँ। तो बाह्य जगत में भी "विभिन्न पात्रों में प्रकट उन्ही" के प्रति अन्तर में हर व्यक्ति के प्रति वही नम्रता, श्रद्धा, पूजा के भाव स्थिर रखने चाहिए। हर व्यक्ति से हर समय मै बाह्य आचरण में तो पूजा कर नही सकता, अन्यथा मंच के पात्रों के सारे अभिनय सोर संवाद ही गड़बड़ा जायगे, सृष्टि का सारा खेल ही अण्ट-शण्ट हो जायगा परन्तु चूंकि मेरा लक्ष्य तो मुझे स्वयं को खिलाड़ी की सामर्थ्य को प्राप्त करना है" अतः अन्तर में तो उस खिलाड़ी को ही विराजमान रखते हुए, वही चारों ओर हर पात्र के रूप में प्रकट है (जो कि सत्य भी है) बाहर का व्यवहार यथापऐय करते जाऊँगा।

अतः मैं अगर, मैं परिस्थितिवश किसी को गोली भी मारूँगा तो अन्तर का भाव यही रहेगा, कि 'राम' को ही गोली मार रहा हूँ।"

गीतोपदेश - "यह आत्मा न मारता है, न मारा जाता हैं" का विश्वास दृढ करना है मुझे

परन्तु यह तो एक बड़ी ही ऊंची अच्छी अवस्था है- इसकी सूक्ष्मता, सुचारूता, उपयोगिता तभी है जब मै, इसको केवल "अत्यन्त विषम परिस्थिति में फंस जाने पर" जब सामने के लीलाधारी शत्रु मुझे मेरे इस शरीर को ही नष्ट करने पर तुल गये हो, आततायी, हिसंक का रूप बनाकर

मेरे सामने आये हो- तभी मुझे "केवल आत्म-रक्षार्थ" इस प्रकार का आचरण करना उचित होगा पापमय न होगा- वैसे यह बात लिखकर, कहकर, पढकर, पढाकर समझी नही जा सकती यह तो स्वयं में अनुभव की बात है, भावना की बात है, अन्तर में उत्पन्न हो चुके संस्कारों की बात है।

क्योंकि परिस्थितियॉ इतनी तीव्रता से प्रकट होती है कि कुछ सोचने, समझने का मौका ही नही मिल पाता है, उस समय हमारा व्यवहार केवल Subconscious से ही चालित हो जाता है, इसी में Subconscious हमने जैसे विचार भर लिये जाते है, जिसे हिन्दी में कहते है कि जैसे "संस्कार" बन चुके होते है। उसी के अनुरूप होता है।

सारा खेल इन संस्कारों को पवित्र बनाने का राममय बनाने का है सारी साधना भक्ति का परम उद्देश्य यही है, कि हमारे हर संस्कार में केवल 'राम' का प्रकाश ही रहे हर व्यवहार उन्ही के प्रकाश से आलोकित होकर हो यह Subconscious Mind इतना लबालब मर जाये श्रीराम से कि वही हमारे Conscious mind में छलक कर आ जाये" हमारे हर क्षण के हर परिस्थिति में व्यवहार करते समय 'राम' का भाव न जाने पाये। हमारा **समग्र चारित्रिक परिवर्तन** हो जाये

इसी के लिए गीता में "स्वधर्म" पालन करने को ही कहा है कि हम समाज में परिवार में जहॉ कही भी, जिस स्थिति में भी है उसे "एकदम छोड़ने की कोई आवश्वयकता नही है।" मात्र इस आन्तरिक परिवर्तन से संस्कारों को राम मय बना लेने से चरित्र में व्यवस्था में राम ही राम बसा लेने से हम हर **स्थिति में पिकनिक का सा आनन्द** ले सकते है। इस स्तर का अभ्यास जारी रख सकते है।

"अब 'राम' ही 'राम' को गोली मार ही नही सकते" की अवस्था है।

यह स्थिति मनुष्य योनि की की बड़ी अच्छी उपलब्धि है, परन्तु "सीमा" अभी बहुत दूर है। यह स्थिति भी बडी व्यापक स्वरूप देने वाली है। यहॉ पर अपने, पराये की सीमा तोड़नी होती है मुझे। जिसे कर पाना बहुत ही कष्टकर दुष्कर कार्य है। मात्र नाटक के रंगमंच के पात्र, बन कर रह जाना होता है सारे मिथ्याभिमान आसक्ति, मोह, ममता, से ऊपर उठकर

सबसे केवल परिस्थिति जन्य घटना क्रमों के अनुसार व्यवहार करते जाना होता है। शत्रु-मित्र, पिता-पुत्र, आदि नातों को भुलाकर, उनसे ऊपर उठकर, जो "जैसी सेवा की भावना लेकर आया है" उसको उसी के स्तर पर प्रत्युत्तर देते जाना पड़ता है। अन्यथा, मेरे जीवन की परिस्थिति से जो भी जिसक्षण बाहर है, सबके लिए अन्तर से नम्रता का भाव, पूजा का भाव, राममय होने का भाव अन्तर में सर्वदा विराजमान रखना होता है।

जो भी अच्छा या बुरा काम सामाजिक, पारिवारिक स्तर पर कर दिया है मैने उससे तत्क्षण उपराम होने का प्रयास करना होता है। न **"प्रायश्चित्त" में फंसना होता है, न धर्मात्मा होने के "गर्व से फूलना" होता है।**

सक्षेप में, जब मैं हरक्षण अराध्य को ही देखने लग पाता हूँ, तब तीसरा स्तर संपन्न होता है।

चौथा स्तर (दशरथ या नन्द बाबा का स्तर):- तीसरा स्तर संपन्न होने पर, मेरा व्यक्तित्व इतना आत्मा (राम) में समाहित हो चुका होता है, या राम मेरे सर्वांग चरित्र में इतना प्रविष्ठ हो चुके होते है या मेरा व्यक्तित्व इतना बदल चुका होता है या मेरे संस्कार इस प्रकार के राममय हो चुके होते है, कि अब जिधर भी दृष्टि जाती है, मुझे उन्ही एक परमात्मा का आभास बुद्धि में स्वतः होने लगता है। अब बुद्धि पर कोई चिन्तन करके इस नतीजे पर नही पहुचना होता है कि सब कुछ राम मय है।

जब हर क्षण के हर विचार में राममय हो जाना सिद्ध हो जाता है, तो मेरा प्राराम्भिक स्वरूप जो मात्र एक विचार है वह भी बदल कर राममय हो जाता है। अतः मुझे स्पष्ट हो जाता है कि मैं राम का ही उपजाया हुआ, उन्ही का बेटा **"विचार"** हूँ और मैं जो कुछ भी देख पा रहा हूँ **वह सब तो, वह है ही और मैं स्वयं उनकी गोद में बैठकर ही देख पा रहा हूँ** अतः अब मैं अपनी अराध्य मूर्ति के साथ ही अपनी आत्मा में सम्पूर्ण सचराचर का दर्शन कर पाने लगता हूँ। मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण आत्म ज्वालाओं में तपकर निखरने लगता है अब मैं अपने ही शरीर गर्भ में अपनी ही आत्मा से (अद्वैत कर) दुबारा जन्मने लगा हूँ।

इसी स्तर को भक्ति की प्रौढ़ावस्था या चौथा स्तर कहते है। जब

मैं अपने शरीर के प्रत्येक सेल में यज्ञेश्वर की उपस्थिति का मान, हर क्षण कर पाने लगता हूँ हर परिस्थिति में मैं उनही आत्मज्वालाओं में अद्वैत करता, अपने अस्तित्व को निरन्तर अधिकाधिक राममय बनाता हर क्षण अपने व्यापक, पवित्र शुद्ध संस्कार युक्त नये व्यक्तित्व में जन्म लेता जाता हूँ बढ़ता जाता हूँ।

अर्थात मेरे शरीर आगंन में एक छोटा सा 'बालक' स्वरूप **कन्हैया का, राम का,** मेरे व्यक्तित्व में जन्म पा जाता है जो मेरे आत्म-ज्वालाओं में तपने के साथ साथ बढ़ता पुष्टता पाता जाता है।

अर्थात मेरे ही व्यक्तित्व में एक बालरूप 'श्री राम' का छोटा सा रूप निरन्तर प्रकट रहता है, जो क्षण-क्षण धीरे-धीरे मेरे तप के साथ बढ़ता जाता है।

जिस समय, श्रीराम जन्मने की प्रक्रिया में होते है, मेरे व्यक्तित्व में तभी मेरे जीवन का चौथापन है।

चार वर्ण व्यवस्था

प्रत्येक स्तर पर :- प्रत्येक व्यक्ति में चारों वर्णों की कल्पना हर व्यक्ति में चारों वर्ण ही नही वरन (ए) पूरा समाज (बी) पूरा राष्ट्र (सी) ब्रह्माण्ड (डी) सचराचर सूक्ष्म रूप से व्याप्त है।

1. अध्यात्म में चारों वर्ण :-

(i) अज्ञान की शूद्रता है। प्रत्येक व्यक्ति जन्मता बालक अज्ञानी होने से शूद्र है इसलिए उसके साथ परिवार में यथावत व्यवहार दिया - छठीपर्यन्त

(ii) ज्ञानार्जन ही वैश्य वृत्ति है। ज्ञान अर्जन ही ते मूल धन है, जिसका निवेश प्रयोग करके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की सिद्धि होती है।

(iii) गृहस्थ धर्म में प्रवेश करता क्षत्रिय है मायाओं के महासमर का महारथी

(iv) गृहस्थ धर्म से उपराम होता, जब आत्मा की भाति ब्रह्म की प्राप्ति के उद्‌देश्य से प्राणी मात्र की सेवाओं को धारण करता वानप्रस्थ में प्रवेश करता है तो ब्राह्मण है।

2. (दैनिक चर्या) समाज में :-

(i) शौच आदि क्रिया के समय, झाडू बुहार के समय शूद्र है ।

(ii) हर नए अनुभव को हृदयगंय करता, वैश्य है।

(iii) अपने हित की रक्षा में प्रयास रत क्षत्रिय है।

(iv) पूजा उपासना करता ब्राह्मण है।

3. पूरे समाज में :-पूरे समाज का भी एक व्यक्तित्व होता है, उसी व्यक्तित्व के चार अंग है, इसी व्यवस्था को संस्कारों (जन्मगत) के कारण जन्मना स्वीकारों गया है।

(i) शूद्र (ii) वैश्य (iii)क्षत्रिय (iv)ब्राह्मण

4. राष्ट्र में :- भी इसी प्रकार चार वर्ण है। व्यवसाय या वर्ग के अनुसार

5. ब्रह्माण्ड में (अ):- 1(i) जड़ता- मिट्‌टी

(ii)वनस्पति- पेड़ पौधे

(iii)पशु-पक्षी आदि

(iv)मनुष्य

(ब) आकाश में -2 (i) पृथ्वी अपने परिवार के साथ

(ii)सूर्य अपने परिवार के साथ

(iii)देव अपने पविार के साथ

(iv)ब्रह्म अपने परिवार के साथ

6. सचराचर में :- (i) सन्यासी

(ii)देव-योनि

(iii)ब्रह्मर्षि सृष्टा

(iv)सनातन आत्मा

इस प्रकार छः स्तरों पर वर्ण व्यवस्था है। इसमें केवल 'समाज' को व्यक्तित्व देने के लिए ही वर्ण - व्यवस्था 'जन्मना' स्वीकारी गई है जो सत्य भी है। परन्तु यदि ब्राह्मणोचित कर्मी के अनुरूप आचरण नही करता है तो तत्क्षण 'ब्राह्मणत्व' से च्युत होकर शूद्र हो जाता है। ब्राह्मणत्व का मतलब है, शिक्षक का। जो स्वयं 'ब्रह्म' के मार्ग पर चल रहा हो और तदनुरूप समाज में उस शिक्षा को देता चल रहा हो।

इस प्रकार

"एकोहम् बहुस्याम" से एको-ब्रम्ह द्वितीयो नास्ति

तक एक ही व्यक्ति में समस्त सूक्ष्म रूप से व्याप्त है, की परम्परा का धागा पिरोया हुआ है। इसी प्रकार **ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एंव शूद्र** की कल्पना में भी एक ही व्यक्ति के जीवन को समाज के रूप में प्रतिबिम्बित किया गया है। यह व्यवस्था जन्मना है। इस व्यवस्था में **"एको ब्रह्म द्वितीयनास्ति से एकोहम बहुस्याम"** की कल्पना को चित्रित किया गया है।

लीला ग्रन्थ का जब, नाटक का प्रत्येक पात्र मै ही बनजाता हूँ। अद्भुत! विलक्षण आत्मा होकर मैं ही तो 'राम' हूँ। घट-घट में रमण करने वाला अजर, अमर अविनाशी आत्मा ही तो 'राम' है। समझ नही पा रहा हूँ कि **मंच अपने सम्पूर्ण पात्रों के साथ मुझमें समाता जा रहा है।**

अथवा

मै ही विस्तार को प्राप्त होता मंच पर छाये जा रहा हूँ।

"एको ब्रम्ह द्वितीय नास्ति" अथवा "एकोअहम बहुस्याम"

हमारी हर भूल और गलती हमारे फेल होने की तरह है। हरक्षण को पूरी सावधानी और सतर्कता के साथ जीना ही एक सार्थक जीवन है।

सीमित समय में हमें इन चारों परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना है। प्रश्न के उत्तर दे पाये अथवा न दे पाये, चिता की लकड़ियों पर इस शरीर रूपी उत्तर पुस्तिका को वक्त छीन ही लेगा।

जीवन पाठशाला की चार परीक्षाएँ

(1) तिमाही - गुरूकूल परीक्षा की तिमाही परीक्षा है।

(2) छमाही - गृहस्थ धर्म उसकी छमाही परीक्षा है।

(3) नवें मास- वानप्रस्थ की पूर्णता ही नवें मास की परीक्षा में उत्तीर्ण होना है।

(4) सालाना - सन्यासी होकर आत्मा से योग करते हुए आत्मस्थ होकर, ब्रह्माण्ड से प्रकट होना ही सालाना परीक्षा है। इस प्रकार सम्पूर्ण मनुष्य-योनि ही परीक्षा के क्षण है। आत्मा ही परीक्षक है। **बड़े विचित्र व टेढे-मेढ़े प्रश्न हैं। जिन्हें परिस्थितिया ही प्रकट करती और झुठलाती है।** शरीर ही उत्तर पुस्तिका है। यूँ हरक्षण हम एक परीक्षा की भांति जीवन के सभी स्तरों पर प्रश्नों के समूह में जी रहे है।

शत्रुघ्न

जिसने अपने जीवन में विषय, वासना, असत्य, अज्ञान, मोह, अहं, लिप्सा रूची नाना शत्रुओं का हनन किया। वही पहुंचेगा भरत तक

दशरथ

(दश+रथ) दशो इन्द्रियों का जिसने नियन्त्रण लिया। जो मन बन गया दशरथ वही भक्ति में हो गया रत (व्याप्त)

भरत

जो मन हुआ भक्ति में रत (व्याप्त) उसी मन ने पाया जीवन के परम लक्ष्य को

कहाया लक्ष्मण

उसे ही आत्मा का साक्षात्कार मिला। उसी ने "राम" का संग पाया और प्राणी मात्र की निष्काम सेवओं को शिरो धार्य करता, वह राममय हो, **"राम" ही हो गया। हे राम!!**

यज्ञोपवीत

जब तक यज्ञोपवीत न हो, बालक शिक्षा का अधिकारी नहीं होता। यज्ञोपवीत ज्ञान को दिशा, जीवन को परम् उद्देश्य तथा जीव को सदा ब्रह्म से जोड़ने वाला परम पवित्र साधन है।

ज्ञान गंगा के समान अथाह है। जैसे नाविक (एक दिशा की ओर ले जाने वाले)के बिना नाव कही नही पहुचती चटटानों से टकराकर ध्वस्त हो जाती है, उसी प्रकार यज्ञोपवीत से रहित ज्ञान को धारण करने वाले की गति है।

साथ ही ज्ञान प्राप्त करना, मनुष्य योनि की मात्र सार्थकता है। अन्यथा वह मनुष्य योनि के लिए मृतक समान उसकी अवस्था मात्र पिशाच या अन्य निम्न योनियों की है। **ज्ञान पाकर लक्ष्य की ओर बढ़ना ही मात्र मनुष्यत्व की पहचान है।** ज्ञान के बिना मनुष्य की जीवन निष्प्रयोजन तथा धरा का भार है। ज्ञान रूपी गंगा में नहाकर ही जीव, मनुष्य-योनि के परम सत्य उद्देश्य को पाता है।

इसीलिए शिक्षा को देने से पूर्व ही **"यज्ञोपवीत"** रूपी **रक्षा-कवच** धारण कराया जाता है। जिससे आगे दिये जाने वाले ज्ञान को प्राप्त होकर वह भटके नहीं, वरन् अपने उद्‌देश्य की ओर बढ़ता रहे और जो भी भटकाव उसे बहकाने वाले मार्ग में आये, उनको नष्ट करता अपनी मनुष्य-योनि को सार्थक बनाने के लक्ष्य में आरूढ़ रहे।

यह लक्ष्य है मनुष्य-योनि से जीव का देवत्व को धारण करना।

ज्ञान का अन्तिम लक्ष्य, (मनुष्य-योनि में) ब्रह्मज्ञानी बनना है।

ब्रह्मज्ञानीः जो यज्ञों द्वारा सृष्टि के उत्पत्ति के धारण, सृजन और संहार के सूक्ष्म ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हो गया है अर्थात जो यज्ञों द्वारा सृष्टि को कर सकने की सामर्थ्य को प्राप्त हो गया है।

जो समर्थ नही वह ब्रह्मज्ञानी कैसा? अर्थात ब्रह्म-ज्ञानी तो "ब्रह्मर्षि" पद प्राप्त वाला ही हो सकता है।

इसी अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पढ़ाई की शुरूआत, किताबों से गुरूओं द्वारा कराई जाती है। इस के दो हेतु होते है - भटकावों से बचते हुए, लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना।

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हमारे जीवन के मूल उद्‌देश्य को हमारे ज्ञान के मूल उद्‌देश्य को तथा "साधना और तप" के मूल उद्‌देश्य को 'प्रतीक' रूप में दर्शाते है। जिसको कमी भी वही भूलना है, कभी भी असावधान नही रहना है।

प्रथम सूत्र :- आत्मा कैसे, पेड़ो के गर्भ में, धारणा, सृजन, और संहार के यज्ञों द्वारा भस्मी को सुन्दर फलों का स्वरूप प्रदान कर रहा है उस सूक्ष्म ब्रम्हज्ञान को धारण करना इसलिये मुझे प्रत्येक पेड़ पौधे की यज्ञ-शाला मानना पड़ेगा और वनस्पति मात्र का भक्त पुजारी एवं उपासक होना पड़ेगा।

दूसरा सूत्र :- आत्मा कैसे हर जीव धारी की देह रूपी यज्ञ-शाला में यज्ञों के द्वारा सन्तान रूप प्रदान करती है, इस यज्ञ के सूक्ष्म ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होना, मनुष्य योनि का दूसरा

लक्ष्य है।

तीसरा सूत्र :- आत्मा कैसे इस शरीर रूपी यज्ञ-शाला में त्रिदेव होकर, जीवन के स्वर्णक्षण प्रकट कर रहा है। उस परम् पुनीत आत्मा को अर्न्तमुखी होकर, उसका साक्षात्कार करना इसलिए निजदेह को ईश्वर की यज्ञशाला मानते हुए; जीव होकर निमित्त भाव से आत्मा को ही समर्पित होते हुए ही जीवन के अमृतमय क्षणों का सदुपयोग करें **(आत्मवत् आत्मा की तरह आत्मा का अनुसरण करते हुए ही)** जियें आत्म यज्ञार्थ जियें। आत्म-सेवार्थ जिये।

अतः इन तीनों सूत्रों का लक्ष्य जब मैं धारण करके जीवन जिऊगॉ, तब मेरा चरित्र कैसा बन जायेगा?

वनस्पति मात्र का समर्पित उपासक होने से धरती सा विशाल प्राणी मात्र में यज्ञ का दर्शन करता प्राणी मात्र को समर्पित होने से - परमेश्वर सा महान निज देह को भी एक ईमानदार ट्रस्टी सा **(जो परमात्मा की धरोहर है) धारण करता - अमृतमय**

सारथिः- आत्मा जो इस शरीर को जीवन के क्षणों से चलायमान, जीवन्त कर रहा है, सारथि है।

सात गांठेः- सप्त विषयों से उपराम हो, सप्त अग्नियों से रहित हो, आठंवी ज्वाला **(ब्रह्म ज्वाला)** आत्मा के प्रति समर्पित होकर जीने की **मेरी सप्त प्रतिज्ञायें है।**

असुर- हमारे भटकते गन्दे विचार हैं।

श्रीराम - घट-घट वासी आत्मा

लक्ष्मण - आत्मा के प्रति अन्तिम रूप से समर्पित सकल्पित मन **(प्रफुल्लित होकर न्योछावर)**

इन्ही के द्वारा असुर वृत्तियों का संहार सम्भव है, परन्तु कब?

जीवन रूपी संग्राम में भौतिकता पाकर जीवन भटकाया तो जा सकता है परन्तु जीवन का अभीष्ट ईश्वर द्वारा निर्धारित लक्ष्य की ओर संचालन तो वानप्रस्थी कृष्ण वानप्रस्थी ही कर सकता है।

अतः हमको वानप्रस्थी मनोवृत्ति बनानी होगी।

ब्रह्मज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान को समर्पित 'मन' भी हो जाये तो क्या? **मंजिल अभी कोसो दूर है।** प्राणीमात्र को समर्पित होकर जीने की वृत्ति, विश्वामित्र, के बिना, सब अधूरी है।

मेरे जीवन में संसार रूपी जंगल में, आत्मज्ञान (श्रीराम), समर्पित मन (लक्ष्मण) एवं निष्काम सेवा (विश्वामित्र) जब एक साथ चले, तभी विचार रूपी असुरों का मै समाप्त कर सकता हूँ।

श्री लक्षमण, आत्मा की पूर्ण समर्पण के प्रेरक है।

श्री विश्वामित्र प्राणीमात्र को ईश्वरीय भाव से समर्पित निष्काम सेवा है।

श्री राम स्वयं अध्यात्म है।

यही है मेरे जीवन का प्रयाग, **यह ही प्रयागराज, तीर्थराज है। कुम्भ का अमृत यही छलकता है।** प्राणी मात्र को समर्पित हुए बिना ताड़का **(दूसरों में दोष देखकर बुरा-भला कहना)** को स्वयं में खोज पाना भी सम्भव नही है। हमारी इस वृत्ति का मारना तभी सम्भव होगा जब आत्मा-ज्ञान एवं समर्पित भक्ति, निष्काम सेवा से जुड़ेगी। तभी **ताड़का** स्पष्ट होगी और आत्म-ज्ञान एवं समर्पित तपस्या द्वारा यह असुर वृत्ति निर्मूल होगी।

मारीच- नाना विषय वासनाओं की मृग तृष्णाएं ही **मारीच** हैं इन्हे स्वयं से

दूर फेका जा सकता है। परन्तु किसी भी क्षण की असावधानी से यह पुनः सोने की लंका दिखा (मे कैद) कर सकती है।

सच ही कहा है:- सत्य का ज्ञान, एवं सूक्ष्म ब्रह्म के रहस्य **प्राणी मात्र की निष्काम सेवा द्वारा ही पाये जा सकते है।**

तीन यज्ञ

प्रथम भस्मी से अन्न में :- जब मैं, चिता पर जल कर भस्मी राख हो चुका था "मेरा" यह शरीर। **वास्तविक रूप में** जहॉ पर मेरी यह आसक्ति यह मेरापन का भाव दृढ़ हो जाता है जहॉ जहॉ मै इस मेरे विवार के जीवन काल में फंसा बैठता हूँ **वही वही पर मै छितरा जाता हूँ।**

तो सबसे अधिक सुदृढ यह आसक्ति इस **शरीर के प्रति होती है।** फिर घर, रूपया-पैसा अवृप्तियॉ बेटे बहू पत्नी आदि से होती है।

शरीर से अधिक सुदृढ आसक्ति और किसी में नही होती है। इसलिए अग्नि के द्वारा जो भाग चिता में तेज में बदल जाता है, उससे तो मै छूट जाता हूँ, परन्तु धुंआ जो पेड़ो द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है, उससे अधिकतर तो छूट जाता हूँ पर सूक्ष्म रूप मे उसमें भी विधमान रह जाता हूँ। सबसे अधिक स्थूल रूप में भस्मी के संग डोलता रहता है मेरी चीख पुकार मौन शान्त उसके साथ।

परन्तु अगर जीवन काल में ही इसको वास्तविक रूप से, आचरण व्यवहार के द्वारा भी, **शरीर को परमात्मा की धरोहर आत्मा की पूंजी जानता हुआ।** यह जानता हुआ कि **मैं तो मात्र इसमें बैठाया गया हूँ कुछ खोजने के लिए, आत्मा सारथि से अद्वैत करने के लिए** मेरा बाहर का जगत में आचरण भी आत्मा के अनुरूप होना चाहिए तभी तो मेरा स्वरूप आत्मा के अनुकूल हो सकेगा और मै **आत्मा का सम्पूर्णता से आलिंगन कर, हम दोनों एक दूसरे में धुल मिल कर एक हो सकेगे** - अन्यथा सारी मेरी उस आलिंगन मे समाविष्ट ही नही हो पायेगी और बाहर ही रह जायगी जिनको दुबारा से आत्माद्वैत की स्थिति में लाने के लिए, मुझे फिर माया जगत में जन्मना पड़ेगा।

इसीलिए, आत्मा के अनुरूप , आत्मन्चत आचरण बहुत ही

आवश्यक है।

(a) भस्मी पानी का संग कर खाद बन गई होती है, वही जब पेड़ की जड़ के पास लगाई जाती है, और पानी दिया जाता है तो

(b) उसी खाद को एवं पानी को, पेड़ की आत्मा ने ब्रह्माबन स्वीकार किया, और ग्रहण किया अपनी जड़ों के द्वारा।

ऐसा होता है कि सूर्य के रूद्रबलय द्वारा फेके गय तेज कण जो पृथ्वी के मायाक्षेत्र में आकर कुपित उठते है भौतिक प्रकाश एंव ताप (माया धर्षण से) देने लगते है। पहले पानी में फंस कर अपनी तीव्रता कम कर बैठते है और तुरन्त पास में ही पेड़ की जड़ों का क्षीर सागर पास में होने के कारण उसमें प्रविष्ट होने की Tendency उनमें हो जाती है। **पेड़ के सारथि** को भी उनकी जरूरत होती है इस प्रकार दोनों ओर से **एक ओर प्रविष्ट होने की की इच्छा, दूसरी ओर ग्रहण करने की इच्छा के फलस्वरूप** वे प्रविष्टि पा जाते है और साथ में ले जाते है खाद के सूक्ष्म कण जो मेरा ही अंग है।

'आत्मा' की ब्रह्मा बन धारण करने की प्रक्रिया को स्वीकार करने की प्रक्रिया।, हॉ ऐसा ही होता होगा, क्योंकि कोई भी बीज जबतक पानी में पड़कर फूलता नही, उसको धूप नही मिलती, अंकुरित नही होता है।

(c) तदन्तर महेश बन प्रलयकंर पशुपतानग्नियो (Cosmic Fries) द्वारा, क्षीर सागर (Gravity free space) में पौधे में यज्ञ किया, उस सामग्री रूपी भस्मी का -

क्योंकि भस्मी के 'कण' स्थूलता लिये हुए ही प्रविष्ट हो गये हैं पेड़ की body में **(जैसे रंगदार पानी में कई पौधों की टहनी डालने पर वही रंग उनकी नसो में दिखाई पड़ने लगता है, थोड़ी देर तक)** उनके साथ 'माया' "Gravity" स्थूलता भी प्रविष्ट कर गयी होती हे। इस "Gravity" के कण वे पूर्णतया शान्त नही रह सकते, और "माया को दूर करके शुद्ध ब्रह्म बिन्दु तेज बिन्दु बनने की प्रक्रिया ही रूद्र क्रिया है, तभी एक दूसरे के प्रति Attraction Repulsion दूर किया जा सकता है। तभी यज्ञेश्वर आत्मा ने प्रलयकर महेश बन, प्रलय मचाना प्रारम्भ किया और अन्ततोगत्वा,

खाद के कण सूक्ष्म तेज बिन्दु में बदल गये।

(d) इसी पवित्र तेज बिन्दु पुन्ज को जब आत्मा ने विष्णु सृजक बनकर स्वीकार किया (धारण किया) एवं उस पवित्र तेज का पूर्नसृजन (सृजन) किया, तेज पुनः यज्ञ (संहार) के द्वारा उस पौधे की आवश्यकता एवं सीमाओं के अनुरूप नाना प्रकार के फलों-फूलों और वनस्पतियों में बदलने लगा।

एक ही पानी- एक ही भस्मी खट्टा नींबू भी, मीठा अंगूर भी है, कड़वीं मिर्च भी, सफेद गोभी तो काला बैगन भी, रंग-बिरंगे पुष्प सब एक ही प्रकार की भस्मी के यज्ञों द्वारा प्रकट हो रहा है।

(संहार)- भस्मी पानी का संग कर खाद-ग्रहा किया पेड़ो की जड़ो में अब आत्मा यज्ञेश्वर के यज्ञप्रारम्भ

(a) ब्रह्मा (स्वीकार किया भस्मी को)

(b) भस्मी Space में Cosmic free द्वारा सूक्ष्म तेज हिन्दु में बदलना

(c) इस तेज बिन्दु को विष्णु ने a) स्वीकार किया

Space में शान्त तेज बिन्दु

पुनर्सृजन is possible only by destroying their original pure forms and coating them with "Vishnu" Power Himself as per requriment of "Space Body"

b) पुर्नसृजन किया , तो
Integration

c) तेज पुनः यज्ञ के द्वारा,
By Yagna as per requirement of Plant Body Space

Actualy What happens in this Yagna? तेज बिन्दु lose their शान्त अवस्था Their identity is संहारित and they re emerge with new identities and integrate (i.e. cluster around) as per requirements of body space यज्ञेश्वर Himself appear as those "Fruits"

द्वितीय- अन्न की सन्तान - एक दम्पत्ति ने भोजन ग्रहण किया, तो

- ब्रह्मा बन सामग्री रूप स्वीकार किया
- प्रलयकंर रूद्र बन उसी सामग्री को तेज में परिवर्तित किया
- विष्णु बन पवित्र यज्ञाग्नि के तेजोमय सूक्ष्म-ब्रह्म को सृजन यज्ञ द्वारा रक्त मांस हड्डी में परिवर्तित किया।
- यह बिन्दु जब जुड़ने लग गर्भ के क्षीर सागर में तो बालक बना

इस प्रकार प्रकृति द्वारा अपनाये गये तेजोमय यज्ञ मार्ग द्वारा ही मेरा अब भी उत्थान सम्भव है।

ब्रह्मा - वह धारक शक्ति जो ब्रह्म को अस्तित्व में लाती है, और उनको धारण किये रहती है।

विष्णु - वह सृजन शक्ति जो तत्व ब्रह्म (इसके लिए Space आवश्यक है) का सृजन करती है, नाना अस्तित्वों में।

महेश- वह सहारंक शक्ति जो अस्तित्वों (इसके लिए Gravity आवश्यक है) का विसर्जन करती है, पुनः 'तत्व बृह्म' में, उनकी मृत्यु करके

यज्ञेश्वर का यज्ञ (यह यज्ञ, विज्ञान का चरम है)

बुद्धि! तू पहले यज्ञेश्वर से योग कर और योगेश्वर बन!

पुनः योगेश्वर से - यज्ञेश्वर स्वयं हो तभी "योगेश्वर+अधिकार" पावेगा। यज्ञेश्वर ही भोगेश्वर पद का अधिकारी है। भोगने का अधिकार तो मात्र 'आत्मा' को है।

"यज्ञ के नियम"

प्रथम नियमः पहले "स्थूल" को सामग्री रूप ग्रहण करें। उस सामग्री का अपना गुण, रूप, रस, गन्धादि त्याग करवाने के लिए उसे रूद्राग्नि (Cosmic fire) में सूक्ष्म तेज ब्रह्म-बिन्दुओं में परिवर्तित करे। जब तक तेज में

परिवर्तित नही होगा उसका पिछला माया का भ्रम मिटेगा नही।

दूसरा नियमः इसिलिए यज्ञ के दूसरे नियम के अनुसार ब्रह्म का सूक्ष्म तेजस्वी स्वरूप होना अनिवार्य है।

तीसरा नियमः तेज में परिवर्तित हो, ब्रह्म का माया मुक्तक्षेत्र (Space gravity free zone) में आना आवश्यक है। Gravity में तो ब्रह्म, सूक्ष्म जो है, कुपित (Radioactive) रहेगा। कुपित रहने से उसका आकार विराट (expanded) रहेगा। अपने सही स्वरूप को प्राप्त हो सकेगा नही।

क्षरी सागर (Space) में आकर सूक्ष्म तेज ब्रह्म gravity न रहने से शान्त (Non-Radioactive) रहेगा। शान्त रहने से विराट स्वरूप को त्याग कर अपने सही स्वरूप को धारण करेगा।

चौथा नियमः क्षीर सागर में ही पुर्नसृजन तत्वरूप में, सम्भव है।- शान्त, सूक्ष्म, तेज, ब्रह्म बिन्दुओं का।

पॉचवा नियमः यानी Space का सीमाकंन तो इच्छा रूपी मायाक्षेत्रों से होते है अथवा जैसा आकार Space का होगा यानी Space जैसा इच्छित रूप धारण कर लेगा, या प्रभाव सीमांकित क्षीर-सागर या मायाओं का प्रभाव सीमांकन

यह **सब कमाल (जादूगरी) है सृजक महाविष्णु का जिनका स्वरूप स्वयं क्षीर सागर है।** क्षीर सागर (Space) का सीमाकंन करते मायाक्षेत्र जैसा आकार उस माया रहित क्षेत्र (Space) को प्रदान करेगें, वैसा ही आकार उस तत्व का होगा। हमारे शरीर के क्षीर-सागर में प्रविष्ट होने वाले शान्त

सूक्ष्म तेज ब्रह्मबिन्दु शरीर की आकृति, रचना एवं **सीमाकिंत इच्छाओं द्वारा (की मर्यादा में)**

यज्ञ के द्वारा यज्ञेश्वर की कृपा से वही ब्रह्म, रक्त, मांस, बाल, हड्डी, ऑख की पुतली में परिवर्तित हो रहा है। वही सूक्ष्म, तेज, बिन्दु, ब्रह्मका। यह तेज का सूक्ष्म ब्रह्म एक ही प्रकार का है। **एको ब्रह्म द्वितीयों नास्ति।**

(a) आकाश नीला क्यों?- माया में पड़े पदार्थ, चाहे लकड़ी, कोयला, कॉच, पत्थर है या शरीर अथवा पेड़ है - निरन्तर धीमी गति से विघटन (Decay) को प्राप्त होते रहते है। उनसे निरन्तर सूक्ष्म-ब्रह्म (atoms) टूटकर अलग होते रहते है। अलग होते ही यह सूक्ष्म-ब्रह्म कुपित (Radioactive) हो उठते है, माया के कारण। कुपित हो विराट स्वरूप धारण कर माया से समर करते हुये ऊपर उठते जाते है। **इनमें से हतकी नीली रोशनी निकलती है, माया के संघर्ष के प्रतिफल में।** सूक्ष्म सुदर्शन चक्र रूप हो युद्ध करते हुए यह सूक्ष्म ब्रह्म, क्षीर सागर में प्रविष्ट हो जाने है तथा शान्त हो पुर्नसृजन को प्राप्त होते है।

इनसे निकलने वाला नीला प्रकाश इतना अधिक सूक्ष्म है, कि सूक्ष्म से सूक्ष्म यन्त्र द्वारा भी दृश्य नही है।

परन्तु असंख्यों नीले प्रकाश निरन्तर फूटते रहने से जब भी मैं शून्य की ओर देखता हूॅ मुझे नीला दिखाई पड़ता है।

इन्ही माया संग्राम की कृपा से ही आकाश मुझे नीला दिखता है। यह एक निरन्तर यज्ञ-प्रक्रिया है।

Body line से बाहर से देखने पर, घटती बढ़ती gravity के impacts के कारण Body के अन्दर प्रविष्ट होकर देखने पर, आकार के Space में स्वतः Pulsations होते है gravity के attack के कारण Reaction या बाहर से प्रविष्ट होने वाले तेज बिन्दुओं की Energy

release के कारण पता नही।

(b) राम, कृष्ण, विष्णु हल्के नीले रंग के क्यों है?- सूक्ष्म ब्रह्म से निकलने वाला प्रकाश नीला है तथा यह **नीला प्रकाश प्रकट होता है। यज्ञ की प्रक्रिया में** - इसलिए यज्ञेश्वर को धनश्याम कृष्णा दिखाया जाता है। वैसे भी "कृष्णा"- हवनकुण्ड**!** यज्ञकुण्ड

(c) कल्प वृक्ष उल्टा क्यों है?- पदार्थ क्षीर सागर (नीला गगन अथवा शरीर का) में सृष्टि को प्राप्त हो रहे है और उलका पात द्वारा पृथ्वी पर बरस रहे है।

इसे पेड़ की जड़े क्षीर सागर से पदार्थ ग्रहण करती है और फल टूटकर गिरते है भूतल पर। एक ओर सृष्टि जीवधारियों की दूसरी ओर सृष्टि तत्व पदार्थो की।

(d) सूर्य को जगत-आत्मा कहा क्यों? आत्मा-प्रतीक बनाया क्यों?- सूर्य के चारों ओर जो रूद्र वलय है, यही प्रकाशवान हवन-कुण्ड मुझे दिखाई पड़ता है, रूद्र वलय में महाप्रलय को प्राप्त हो उल्का पिंड जो सूक्ष्म-ब्रह्म में परिवर्तित हो उढते है, उनके समूह (सदा शान्तक्षीर सागर खोजते है,अधिक माया में कदापि जाते नही है।) पलट कर क्षीर सागर में भागते है।

यह तेज के पुंज जब भूतल पर (धक्का खाकर रूद्रवलय से) उत्तर आते है, तो पृथ्वी तल को छू जाते है यहॉ से छिटक कर पलट कर भागते है क्षीर सागर को। परन्तु इनमें से बहुत से छले जाते है भूतल पर। वह तेज के ब्रह्म जो शरीर में प्रविष्ट हो गये जीवधारियों के, वे क्षीर सागर में इन यन्त्रों में शान्त हो, तत्व में परिवर्तित हो जाते है।

आये, जैसे ही क्षीर सागर में, तो ऊष्मात्याग कर शान्त हो सो गये।

अब आत्मा विष्णु इनका जो चाहे सो पदार्थ बनावे। **विष्णु का भोजन तो यह सूक्ष्म बिन्दु ही है।** इनके अतिरिक्त उनकी

सृजन-क्रिया चल नही सकती।

इस प्रकार सूर्य-आत्मा कुण्ड ने सम्पूर्ण आत्माओं को भोजन स्वरूप तेज के सूक्ष्म ब्रह्म प्रदान किये तो **जगत-आत्मा** कहाने का सम्मान पाया।

प्राणधार है यह यज्ञ सम्पूर्ण चराचर का।

शरीर सामग्री का यज्ञ करो। एक सांस न जावे रीती। आत्मा कुण्ड का आवाहन करो। तेज को तेज में ढाल कर पीते चलो, अमृत तेज का।

तीसरा यज्ञ - बुद्धि पुजारी का आत्मा हवन-कुण्ड में शरीर-सामग्री को यज्ञ कर, सम्पूर्ण को तेज में परिवर्तित कर देना।

इस प्रकार बुद्धि का यज्ञ के सूक्ष्म रहस्यों को जानना और **इच्छाधारी स्वरूपों में परिवर्तित हो सकने में समर्थ होना। यह सीमाएं विष्णु की इच्छा है- Sapce की सीमा इच्छाएं ही बनाती है।**

कैसे करे बुद्धि यह यज्ञ?

दसो इन्द्रियों की लिप्साओं को त्याग दे। चिन्तन की बहिर्मुखी दिशा को मोड़कर अर्न्तमुखी कर दें। आत्मा-कृष्ण के संग रास रचा कृष्ण से कर तू-ठिठोली, खेल कन्हैया की गोद में, फिर समेट ले उसको आंचल में।

हर ओर यज्ञेश्वर प्रकट है- अब तो समेट लो, लिपटा लो मुझको कृष्ण ध्यान से कुण्ड में प्रज्जवलित कर आत्मा-रूपी अग्नि को। पावन तेज में परिवर्तित कर दे सम्पूर्ण को। ज्ञान को आत्मा हेतु ही ग्रहण कर। भक्ति को आत्मा हेतु ही धारण कर। कर्म को आत्मा हेतु ही गति दे।

कल्याण हो जावे तेरा। **संग का पुण्य मोक्षदायक भी है।** क्यों न करे संग तू उस अमर आत्मा का, कि संग का पुण्य मिले और अमर हो जावे तू**!**

सब मार्गों का त्याग कर एक आत्मा की शरण में आ। हे मनुष्य! न्योछावर हो जा। तेजरूप ब्रह्म, जो स्वरूप ग्रहण किया रश्मियों से तेरी भोजन आत्मा ने आत्मा का विष्णु होकर भोजन-तेज ही है। यह तेज आता है रश्मियों से अन्न में अन्न से, शरीर में, शरीर से पुनः तेज में शरीर बनता है।

कितने एहसान उतार सका तू उसके? उसका प्रत्युत्तर तूने क्या दिया उसको? जितना ग्रहण किया उतना शक्तिपूर्वक लौटाया भी। **मोक्ष मार्ग पर जाते योगी को चाहिए कि शरीर का नित्य होम करें**

नारायण आपके रक्षक हों।

महाशिव कल्याण करें।

ब्रह्मा आपको अमर तेज प्रदान करे।

प्रकृति की तीन आदि महा शक्तियाँ ब्रह्मा-विष्णु-महेश नाम है जिनके।

उनके द्वारा सूक्ष्म-तेज-स्वरूप आत्माओं का स्वरूप प्रकट हुआ। इन आत्माओं ने यज्ञों द्वारा क्षीर-सागर में बन नाना रूप धारण किये। निरन्तर यज्ञो द्वारा क्षीर सागर में सूक्ष्म ब्रह्म बिन्दुओं का सृजन कर नये नये स्वरूप बनाये।

तो मेरा अपना अस्तित्व जो पहली बार बना वह सूक्ष्म तेज स्वरूप था। उसमें सभी तेज के ज्ञान, गुण वर्तमान है। यह कैसा रहा होगा? ब्रह्मा शक्ति ने जो अस्तित्व को प्रकट करने वाली है, वही मुझे भी अस्तित्व में लायी होगी। अब चूंकि सृजन उसी अस्तित्व का तथा उसी अस्तित्व के लिए दूसरी ओर ब्रह्म शक्ति द्वारा प्रकट किये जा रहे ब्रह्म-बिन्दु Atoms को नाना नाना स्वरूप देकर होता है। मेरा शरीर व्यक्तित्व की इच्छा अनुरूप ही क्षीर सागर में बनता है।

शिव धनुष (विवाह)

धनुष शिव का है। शिव है प्रलय के देवता।

आवागमन का नृत्य ही ताण्डव है। **धनुष मृत्यु की सीमा है।** प्रलयकर शिव के हाथ में मृत्यु रूपी प्रलय है। **धनुष को भंग करने का अर्थ है, आवा-गमन की सीमाओं और मर्यादाओं को तोड़ नित्य अर्थात अमर हो जाना।**

"जनक" कहते है "उत्पत्ति की करने वाले" अर्थात "ब्रह्मा" जी को। "बह्मा" की उत्पत्ति को महाविष्णु (श्रीराम) जबतक अमरता न प्रदान करे तो वरण कैसे होगा। **जिसने शिव के धनुष को अर्थात प्रलयकर की प्रलय रूपी मृत्यु को जीत लिया। जो अजरता और अमरता को प्राप्त हो गया, वही जयमाला का अधिकारी है। उसी का मिलन सच्चा एवं अन्तिम है-**

उतब्रुवन्तु नो निदो निरयन्तश्चिदारत दधाना इन्द्र इछुव।।

हे ईश्वर मैं संशय, बनावट, संदेह सबको मिटाकर तुममें एकी भाव से स्थित हूँ। जैसे ज्वाला समिधा (लकडियॉ) को धारण करती है उसी प्रकार मुझ को धारण करो। जैसे समिधा अग्नि में जलकर स्वयं अग्नि हो जाती है। **अपने स्वरूप को मिटा कर लपट हो जाती है ऐसा ही मेरा आपसे मिलन हो।**

ऐसे मिलें कि रूप खो जायें। **दो न रहें बस एक हो जाय।** फिर कभी कभी जुदा न किये जा सके! प्रलय (शिव के धनुष) के अवरोध मिटा दें।

श्री लक्ष्मण (श्री राम रूपी लक्ष्य में मन-समाधिस्थ योग) की पूर्णता है उर्मिला। **उर अर्थात ह्रदय में जब अराध्य मिला (उरमिला)** तो प्रलयकर के आवागमन रूपी धनुष भंग हो गये! जीव का आत्मा से अन्तिम रूप से मिलन हुआ। स्वयंवर सफल हो गया।

उर्मिला देह से अयोध्या में वास करती है पर उनका 'उर' (ह्रदय) प्रतिक्षण अपने पति श्री लक्ष्मण जी से मिला रहता है। योग की पराकाष्ठा है।

विवाह के बादः बिलखती बहू (जीव) चलती है। नयी दिशा नया मोड़ अचेत

होती चेतना। मस्तिष्क के महलों में चमकते हर ओर शून्य! स्मृतियाँ स्मृतियों!! से उभरते वे वात्सल्य भरे मोहक मुखड़े सिर्फ शून्य!! गहराते अन्धेरों में शिथिल शरीर ढलती सांझ। खोजती एक सुबह नई, न जाने कैसी?

परमेश्वर सृष्टा एक है और घट-घट वासी भी

जो परमशक्ति है जो सगुण और निर्गुण को प्रकट करने वाले है। जो सृष्टि द्वारा ही प्रतिबिम्बित एंव प्रतिध्वनित होते है। उनके एक होकर अनेक होने की सामर्थ्य में संदेह नही होना चाहिए।

सचराचर की प्रकट करने वाले असीम की कोई भी किसी सीमा में नहीं बांध सकता। सर्व अन्तर्यामी, सर्वसमर्थ को सीमित नही करना चाहिए, उन्हे केवल एक स्थान (सप्तलोक) परसीमित नहीं किया जा सकता। **वे घट-घट वासी भी है, सर्व व्यापी भी है, असीम की कोई सीमा नहीं।** मूर्तिकार की बनाई मूर्ति पुनः मूर्ति प्रकट नहीं कर सकती। क्योकि मूर्तिकार की मूर्ति बनाने वाली शक्ति मूर्ति में नही है अथवा मूर्तिकार स्वयं मूर्ति में उपस्थित नही है। परन्तु हर घट में हो रही निरन्तर उत्पत्ति ही उस सर्वव्यापी की घट में उपस्थिति का प्रमाण है तथा माता-पिता पुनः बालक उत्पन्न करते है। भोजन बालक कैसे बना? उस 'एक' ने ही तो अनेक होकर हर देह की रक्षा की, और उसे संतति से वरद् किया।

याद रखो, ईश्वर प्रत्येक घट में वास करते है, **केवल यज्ञ करते है, प्रत्येक घट ईश्वर नहीं है** असत्य, अत्याचार, ईर्ष्या द्वेष, घृणा, वह स्वयं नही है। यह हमारी examination Hall की प्रश्न पत्र हल करने की आजादी है।

जो प्राणी मात्र को ऐश्वर्य दे स्वयं को भुलाकर, उसे कहते है ईश्वर! ईश्वर की इस सुखद, वरद कल्पना को लेकर मनुष्य मात्र के पास जाने का हमारा मूल उद्देश्य है कि धरती का प्रत्येक मनुष्य ईश्वर बने!

"रूद्रवलय की अनिवार्यता"

जिस प्रकार ग्रह रूद्रवलय को धारण कर अमर हो जाता है। रे मनुज! तू भी आत्मज हो, तेज को धारण कर अमर हो जा। ग्रह रूद्रवलय

को धारणकर नित्य सनातन स्वरूप को प्राप्त हो जाते है।

ज्योति जली क्यों? लपट उठी क्यों? पदार्थ में रहने से क्षीर सागर था (Balance of Gravities था) तो Gravities प्रभाव हीन थी। परन्तु सूक्ष्म ब्रह्म जब छिटक कर अलग हो गये - पदार्थ से, तो उनके चारो ओर का क्षीर सागर नष्ट हो गया। क्षीरसागर के हटते ही सूक्ष्म ब्रह्म को माया घेरने लगी। क्या करे सूक्ष्म ब्रह्म? ब्रह्म अमर है। परन्तु किस प्रकार अपने अमरत्व को बनाये रखे। माया के पैने बाणों को निरस्त्र करने के लिए, ब्रह्म कुपित हो उठा और उसका स्वरूप विराट होने लगा। उसकी नाना भुजाएँ (जिन्हे electrons कहा जा सकता है) प्रकट होने लगी। और तेजस्वी स्वरूप धारण कर मायाओं को निरस्त्र करता हुआ, सुदर्शन चक्रकी नाई धूमता हुआ, वह ऊपर उठने लगा। इस प्रकार मायाओं को निरस्त कर क्षीरसागर में आया तो पुनः शांत हो उसी सूक्ष्म बिन्दु स्वरूप में आ गया।

क्षीर-सागर में, **हिरण्य गर्म में** (जहॉ किसी भी ग्रह की माया प्रविष्ट नही होती) यज्ञ के द्वारा बिन्दु ग्रह के स्वरूप को प्राप्त होता है। उसी प्रकार माता के गर्म के क्षीर सागर में बिन्दु बालक के स्वरूप को प्राप्त होता है गर्म के क्षीर सागर में यज्ञ के द्वारा।

हमारी पृथ्वी पर माया का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा है - इसकी परिक्रमा का विस्तार हो रहा है।

माया का एक अचानक झटका टूट चला ग्रह, परिवार से बाहर, सारे ग्रहों से अपनी माया का अनुपात एवं नियंत्रता खोकर भागने लगा, अनन्तक्षीर सागर में

Balance of gravities with different planets of complex was lost. Total gravity of planet fell on the planet. Total gravity rssulted in total decay of that planet. Thus entrie planet disintegrated unto radio active atoms due to ABSOLUTE GRAVITY इस प्रकार पशुपताग्नि (Cosmic Fire) के द्वारा सम्पूर्ण ग्रह बिन्दुओं में विभक्त हो गया।

सनातन के अनुसार जीवन का इस लोक पर स्थानान्तरण किया गया था। सर्वप्रथम इस धरती पर देवताओं द्वारा जीवन लाया गया।

(देवयानों द्वारा) माया पर नियन्त्रण मिल जावे तो यान मारहीन स्थिति में, एक क्षण में 1,80,000 मील की गति से **कही अधिक चलेगा।**

माया पर नियन्त्रण मिल जावे तो मनुष्य (सशरीर) अमर हो जावे। सूक्ष्म अणु मूलतः एक ही है- **एको ब्रह्माण्ड द्वितीयों नास्ति।** सृजन के रहस्य से इनके नाना रूप गुणादि प्रकट होने लगते हैं सम्पूर्ण ब्रह्माण का सूक्ष्म अणु जिसमें ब्रह्माण्ड की सर्व शक्तियॉ निहित है 'ब्रह्म' है। यह बिन्दु एक ही प्रकार के है। यह बिन्दु एक दूसरे से जुड़ते नही है, वरन मोहित होते है। यह बिन्दु अमर है। इन्हे नष्ट नही किया जा सकता। ब्रह्म का विस्तार इतना हो सकता है कि एक ही ब्रह्म में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समा जावे। **"काल तो मिथ्या है, गति ही सत्य है।"**

सनातन लोक मण्डल- जिसका दूसरा नाम ही सुदर्शन चक्र है। सनातन का अर्थ है नित्य। जो किसी ग्रह की परिक्रमा नही करता। परिक्रमा न करने से कालातीत" है अर्थात वहॉ कोई समय की इकाई हो ही नही सकती।

इस सुदर्शन चक्र को अनन्तक्षीर सागर के अधिपति महाविष्णु इसे धारण करते है। आज का वैज्ञानिक तो जान ही नही पाया है कि माया क्या है और कितने प्रकार की है?

ग्रह- एक विशाल उल्का-पिण्ड जो ग्रह के सब गुणों को धारण कर चुका था। धुरी भ्रमण एवं सूर्य की परिक्रमाओं को प्राप्त हो चुका था। पृथ्वी नामधारी

Weight & Gravity - इस पृथ्वी की gravity को घटाया जाय किसी छोटे ग्रह के द्वारा। This planet has no weight, weight is of gravity if I can lift the gravity, I can carry this planet on my finger tips.

जैसे पृथ्वी की gravity को करने के लिए चन्द्रमा को पृथ्वी की माया से सन्तुलित कर छोड़ दिया। पृथ्वी का उपग्रह बन पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा। चन्द्रमा ने जल को अपनी माया से खीचा, पृथ्वी ने जल को अपनी माया से खीचा, तो जल नियन्त्रित मूसलाधार बरसने लगा। झटका नही लगा।

Water Brought from space to the surface of earth by

Balancing of gravity without giving any impact to Earth Body which was done by placing moon and bringing the water in a balanced way thus, **क्षीर सागर के देवता विष्णु जोकि क्षीर सागर स्वयं है** कि पैर के अंगूठे से निकली है यह गंगा और माया के देवता **(cosmic lord) शंकर** की जटाओं में उतारी गई है। चन्द्रमा उनके भाल पर दिखा दिया गया।

Cosmic Arch of Sun- द्यावा पृथ्वी (सूर्य पृथ्वी) से कई लाख मील बाहर दूर, दूर, सूर्य के प्रत्येक ओर रूद्रवलय है जो प्रकाशवान है। यही दिखता है हमें यह रूद्र वलय अपनी भारी माया (Gravity) द्वारा उल्काओं एवं गैस के बादलों को अपनी ओर आकर्षित करता है तथा माया द्वारा सूक्ष्म ब्रह्म में परिवर्तित कर कुपित कर देता है। यह ब्रह्म समूह इस वलय के भीतर जा ही नही सकते, क्योंकि जितना भीतर जावेगी, माया उतनी ही गहन होती जावेगी। धावा पृथ्वी और Cosmic Arch के बीच Sun-Atmosphere है।

Heat Cannot travel in space heat can only travel in gravity

Suns Cosmic Arch and Cosmic Force are the terms for **"सूर्य के रूद्र वलय"** और **"रूद्र क्रिया"** के बीच Sun Atmosphere है। सूर्य की भारी माया जो उसको चारों ओर से घेरे है, इस रूद्र वलय (Cosmic Arch) द्वारा नियन्त्रित है।

इसलिए सूर्य न तो तेज लेता है, न देता है। इसलिए सूर्य ठण्डा है। रूद्र वलय (Cosmic Arch) जब तक सूर्य का अस्तित्व है, शान्त नही हो सकता तथा जब तक रूद्र वलय है। सूर्य के अस्तित्व को खतरा हो ही नही सकता। स्पष्ट है कि सूर्य अमर हो चुका है। इस प्रकार ग्रह रूद्र वलय को धारण कर अमर हो जाता है। **रे मनुज, ते भी सूर्य हो, तेज धारण कर, अमर हो जा।**

सीमिति साधन के अतिरिक्त बस नारायण ही हैं। उपेक्षा है, वंचक भाव है, घुटन है, इसके बाद भी जीवन को ईश्वरमय बनाने की इस प्रभु की बगिया की, रक्षा, सेवा का संकल्प है।

सनातन संस्कृति के मौलिक स्वरूप को यथा सामर्थ्य फैलाने की चाहत है।

–सनातन प्रेम

दस घर का कुत्ता, हर घर मार खाता है और भूखा भटकता है। एक घर का कुत्ता मालिक को भी नौकर बनाता है। एक आत्मा के द्वार बैठ।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो, महेश्वरः।
गुरुसाक्षात परंब्रह्म, तस्मैं श्रीगुरुवैनमः।।

श्री स्वामी सनातन श्री

गुरुरेवपरंब्रह्मं गुरुरेव परागतिः।
गुरुरेव पराविद्या गुरुदेव परायणम्।।

गुरु ही परायण के योग्य हैं।